Chap-4

==

: अध्याय — चार :

: वेश्या-जीवन पर आधारित हिन्दी उपन्यास (2)

==

: अध्याय- चार :

: वेश्या-जीवन पर आधारित हिन्दी उपन्यास {2} :

प्रास्ताविक :

प्रथमतया हमारा उपक्रम तृतीय अध्याय में ही ऐसे सभी उपन्यासों की चर्चा करने का था, जो वेश्या-जीवन को किसी-न-किसी रूप में चित्रित करते हैं; किन्तु तृतीय अध्याय का व्याप और विस्तार बढ़ जाने से, प्रस्तुत अध्याय में शेष उपन्यासों की चर्चा का उपक्रम रखा गया है। कुछ विद्वान लाला श्रीनिवासदास कृत "परीक्षागुरु" को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं, और उस उपन्यास में भी वेश्या-जीवन का चित्रण प्रकारान्तर से हुआ है। फलतः "परीक्षा-गुरु" से लेकर आदर्श हिन्दू, स्वर्गीय कुसुम, अंधेरी गली का मकान आदि कुछ प्रेमचंद-पूर्वकाल के उपन्यासों की चर्चा की गई है। प्रेमचंद-युग के उपन्यासों में "सेवासदन", " बुधुआ की बेटी ", जनानी सवारियाँ, चम्पाकली, हिज हाईनेस, मयखाना, तीन

इक्के , प्रेत और छाया , घरौंदे आदि उपन्यासों को लिया है। कब तक पुकारूं और "शेखर- एक जीवनी" प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यास हैं। प्रस्तुत अध्याय में प्रेमचन्दोत्तर काल के बाद के उन उपन्यासों को चर्चा का विषय बनाया गया है , जिनमें वेश्या-जीवन का चित्रण किसी-न-किसी रूप में हुआ है।

§1§ त्यागपत्र :

जैनेन्द्र द्वारा प्रणीत "त्यागपत्र" हिन्दी का एक अत्यन्त विवादास्पद किन्तु श्रेष्ठ उपन्यास है। जैनेन्द्र और कुछ न लिखते तो भी केवल इसी एक उपन्यास के बूते हिन्दी साहित्य में अपना अमिट स्थान बना जाते। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे सामाजिक नैतिकता के आग्रही आलोचक जहां उसकी श्रेष्ठता को संदिग्ध करार देते हैं , वहां दूसरी ओर डा. नगेन्द्र , डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय , डा. देवराज उपाध्याय , डा. रामदरश मिश्र तथा डा. पारुकान्त देसाई प्रभृति विद्वान उसकी कारुणिक मार्मिकता के कारण इसे हिन्दी के कुछेक श्रेष्ठ उपन्यासों की श्रेणी में रखते हैं। मानवीय संवेदना की इतनी गहराई व मार्मिकता अन्यत्र दुर्लभ है। सचमुच जो शास्त्र में नहीं मिलता वह आत्म-व्यथा में मिल जाता है।[1] जैनेन्द्रजी का यह वाक्य उपन्यास के केन्द्रवर्ती भाव को रेखांकित करता है। डा. देवराज उपाध्याय के शब्दों में "त्यागपत्र" मानव-आत्मा की त्रासदी है। यथा - " मृणाल की नियति की कुटिलता को जरा देखिये। यह वज्र हृदय को भी हिला देनेवाली ट्रेजड़ी उसके अनाथ होने में नहीं , उसके जीवन में रोटियों के लाले पड़ने में नहीं , उसके तिल-तिल कर मरने में नहीं , बल्कि पति के प्रति समर्पित जीवन व्यतीत करने के कारण पति की उपेक्षिता हो नारकीय जीवन के स्वीकार कर लेने पर बाध्य होने में है। परिस्थितियों के नीचे दबकर कब्र में चला जाना तो कुछ नहीं , पर परिस्थिति के चक्कर में पड़कर एक सती-साध्वी स्त्री का अपवित्र वेश्या-जीवन की भयंकर यंत्रणा को स्वीकृत करने के लिए बाध्य होना ,

यह आत्मा की ट्रेजेडी है ।" [2]

"त्यागपत्र" में लेखक ने आनुषंगिक रूप से वेश्यावृत्ति की समस्या की ओर संकेत किया है । पति के द्वारा त्याग दिए जाने पर मृणाल का कोयले वाले के संग रहना कुछ लोगों को वेश्यावृत्ति लग सकता है । कोयले-वाला मृणाल के रूप पर मुग्ध होकर उसे दूसरे शहर में ले जाता है । वह मृणाल की असहाय स्थिति का भरपूर फायदा उठाता है । मृणाल को उस पर केवल तरस आता है । दया और करुणा में आकर ही उसके प्रति वह समर्पित होती है । उससे मृणाल को गर्भ भी रहता है । और मृणाल यह भी भलीभांति जानती है कि एक दिन यह बनिया भी उसे निस्सहाय छोड़कर अपने घर-परिवार और बीबी-बच्चों के पास चला जायेगा ।

अब ऐसी स्थिति में मृणाल को क्या कहा जाए ? पति ने उसे कुलटा समझकर निकाल दिया है । पति उसे कुलटा या चरित्रहीन क्यों समझता है ? क्या उसका कोई ठोस आधार है ? मृणाल का दोष केवल उसकी ईमानदारी है, उसका छल-रहित व्यवहार है । इसलिये हरिवंश-राय बच्चन की काव्य-पंक्तियां स्मृति में कौंध रही हैं —" गर छिपाना जानता तो / जग मुझे साधु समझता / शत्रु मेरा बन गया है / छल-रहित व्यवहार मेरा ।" [3] मेरे मार्गदर्शक प्रोफेसर पारूकान्त साहब की पंक्तियां भी यहां तुलनीय हो सकती हैं —" छिपा सका न दोष चेहरे के दामन पर / बात मेरी यह दुश्मन जानी हुई ।" [4]

मृणाल की गलती यह है कि वह सोचती है कि पति-पत्नी के रिश्ते में ईमानदारी होनी चाहिए । इसमें कोई दुराव-छिपाव नहीं होना चाहिए । पारदर्शिता होनी चाहिए । फलतः वह अपने विवाह-पूर्व के असफल प्रेम-संबंध की बात अपने पति से कर देती है । और प्रेम भी कैसा ? जिसे हम अशरीरी-प्रेम या "प्लेटोनिक लव " कह सकते हैं । कई सती-साध्वी समझी जाने वालीं लड़कियां अपने विवाह-पूर्व के शारीरिक संबंधों तक को छिपा ले जाती हैं, वहां यह बेचारी अपनी सहेली के भाई के साथ के मानसिक-स्तर के प्रेम का इजहार कर

बैठती है । मृणाल का पति उज्जड़ किस्म का आदमी है । उसकी प्रामाणिकता को सराहने के स्थान पर वह उसे बात-बात पर कोसता है , गालियां देता है , उसे कुलटा कहता है और एक दिन तो घर से निकाल ही देता है । देखिये इस संदर्भ में स्वयं मृणाल क्या कहती है — " पति को मैंने नहीं छोड़ा । उन्होंने ही मुझे छोड़ा है । मैं स्त्री-धर्म को पतिव्रत-धर्म ही मानती हूं । उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती । क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता , तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे ? मुझे देखना भी नहीं चाहते , यह जानकर मैंने उनकी आंखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया । उन्होंने कहा — " मैं तेरा पति नहीं हूं " , तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती ? पतिव्रता का यह धर्म नहीं है ।" 5

और तब कोयले वाले बनिये के साथ वह निकल गयी । यथा- " मैंने उस बेचारे पूछा — " कहां चलोगे ? "जहां कहीं चलें । मेरी प्यारी , तुम मेरी सर्वस्व हो । " जैसी मैं उसकी प्यारी थी और प्यारी हूं , वह मै जानती हूं । उसे अपना ही प्यार था , लेकिन उसे इसका पता न था । उस समय के मेरे जी की हालत मत पूछो । ऐसा त्रास मैंने बहुत कम भोगा है । उसका प्रेम स्वीकार करने की कल्पना भी दुर्विसह्य थी । पर उसका दायित्व क्या मुझ पर न था ? और यह भी ठीक है कि उस समय उसका सर्वस्व मै ही थी । मै उसके हाथ से निकलती तो वह अनर्थ ही कर बैठता । अपने को मार लेता , या शक्ति होती तो मुझे मार देता । सच कहती हूं प्रमोद , कि उस समय उस आदमी पर मुझे इतनी करुणा आई कि मैं ही जानती हूं । मैं उसके उस भ्रम को किसी भांति नहीं तोड़ सकी हूं , उस पर मुग्ध हूं , ऐसा करना क्रूरता होती । मेरे पास जो कुछ बचा-खुचा था , मैंने उसे सौंप दिया । हजार-बारह सौ से ज्यादा का वह माल न होगा । सब कुछ उसे देकर इस जगह का नाम मैंने सुझाया और कहा — "वह दूर जगह है , वहीं चलो । " जानते हो प्रमोद , इस जगह का नाम क्यों बताया ? इसलिए कि मैं जानती थी कि जगह तुम्हारे

पास है और एक-न-एक रोज मैं तुम्हें जरूर देख पाऊंगी ।" 6

वह बनिया भी मृणाल को असहाय अवस्था में छोड़कर चला जाता है वापस अपने परिवार में । मिशन अस्पताल में उसने एक बच्ची को जन्म दिया जो कुछ दिनों के बाद नहीं रही । मिशन वालों ने उसे कहा था कि वे उसे काम भी देंगे और उसकी बच्ची को भी रख लेंगे, बशर्ते कि यदि वह ईसाई धर्म अंगीकार कर लें । परन्तु वहां से वह चली जाती है । बाद में एक सम्भ्रान्त परिवार में उसे काम मिलता है, पर वहां से भी उसे जाना पड़ता है, क्योंकि उस परिवार की लड़की से प्रमोद का रिश्ता होने जा रहा था । प्रमोद ने सत्य प्रकट कर दिया । उस पर बवाल हुआ । वह रिश्ता तो नहीं ही हुआ, मृणाल को भी जाना पड़ा । हमारा हिन्दू समाज सबकुछ पचा लेगा, नहीं पचा पायेगा तो केवल सत्य, कठोर सत्य ।

बाद में कई-कई बरसों बाद जब मृणाल का अता-पता मिलता है, तो वह उस जगह पहुंच गई है, जिसे गन्दी बस्ती कहा जाता है । जहां हर प्रकार के गुण्डे, बदमाश, मवाली, दारूवाले, मटके वाले और वेश्याएं रहती हैं । जैनेन्द्रजी ने इसका यथातथ्य वर्णन किया है । वेश्याओं के परिवेश की दृष्टि से इस अध्याय का महत्व है ।उस जगह के संदर्भ में लेखक लिखते हैं -- "यहां किसीको यह कहने का लोभ नहीं है कि वह सच्चरित्र है । यहां सच्चरित्रता के अर्थ में मानव का मूल्य नहीं माना जाता । दुर्जनता ही मानो कीमत है । यहां उसी हिसाब में से मानव की घट-बढ़ कीमत है । मैं मानती हूं कि यह रोग का मूल है । भयानक जड़ता है, किन्तु लाभदायक भी है वह । इस जगह आकर यह असम्भव है कि कोई अपने को सच्चरित्र दिखाए, दिखना चाहे, या दिखा दिखा सके । यहां सदाचार का कुछ मूल्य नहीं है, अपेक्षा ही नहीं है । बल्कि [वह] ऋण मूल्य है । अगर कहीं भीतर, बहुत भीतर मज्जा तक में, छिपा विकार का कीटाणु है तो यहां वह ऊपर आ रहेगा । यहां

छल असम्भव है । जो छल शिष्ट समाज में जरूरी ही है । यहां तहजीब की मांग नहीं है, सभ्यता की आशा नहीं है । बेहयाई जितनी उघड़ी सामने आवे उतनी ही रसीली बनती है । बर्बरता को लाज का आवरण नहीं चाहिए । मनुष्य यहां खुलकर सगर्व पशु हो सकता है, जो नहीं हो सकता उसकी मनुष्यता में बट्टा समझा जाता है । इसलिए xxx सच्चरित्र दीखने वाला यहां नहीं टीक सकता । उसे मज्जा तक सच्चा होना होगा, तभी खैरियत है । जो बाहर हो, वही भीतर । भीतर पशु हो तो इस जलवायु में आकर xxx बाहर की मनुष्यता एक पल न ठहरेगी । मनुष्य हो, तो भीतर तक मनुष्य होना होगा । कलई वाला सदाचार यहां खुल कर उघड़ रहता है । यहां खरा कंचन ही टिक सकता है, क्योंकि उसे जरूरत नहीं कि वह कहे कि मैंपीतल नहीं हूं । यहां कंचन की मांग नहीं है, पीतल से परहेज नहीं है । इससे पीतल रखकर ऊपर कंचन दीखने वाला लोभ यहां छन भर भी नहीं टिकता है । बल्कि यहां पीतल का मूल्य है । इससे सोने के धैर्य की यहां परीक्षा होती है । सच्चे कंचव की पक्की परख यहां होगी । यह यहां की कसौटी है । मैं मानती हूं कि जो इस कसौटी पर खरा हो सकता है, वह खरा है और वही प्रभु का प्यारा हो सकता है ।"[7]
और इन्हीं गन्दी बस्तियों में एक दिन मृणाल दम तोड़ देती है । इस उपन्यास में लेखक ने खुलकर कुछ ही नहीं कहा है । बहुत कुछ संकेता-त्मक ढंग से कहा गया है । अतः मृणाल को वेश्या मानें या न मानें यह सवाल अधर में ही लटका रह जाता है ।

§2§ मुक्तिबोध :
=============

जैनेन्द्र-प्रणीत उपन्यास " मुक्तिबोध" में स्पष्टतया वेश्या-जीवन का चित्रण नहीं हुआ है, और साथ ही जैनेन्द्र की नायिकाओं को वेश्या कु के अन्तर्गत रखा जाए या नहीं, यह भी एक बुनियादी सवाल है । "त्यागपत्र" की मृणाल के संदर्भ में हम इस तथ्य को रेखांकित

कर चुके हैं । अतः "मुक्तिबोध" की नीलिमा के संदर्भ में भी इसी प्रकार का सवाल उठ सकता है, फिर भी इस उपन्यास को हमने अपने अध्ययन का विषय इसलिए बनाया है कि, वेश्याओंके प्रकार या कोटियों के संदर्भ में इसी प्रबंध के अंतर्गत जो चर्चा की गई है, उसमें "रक्षिता" या "केप्ट" को भी वेश्या के अन्तर्गत रखा गया है और वेश्या की जो परंपरागत या रूढ़िगत परिभाषा उपलब्ध होती है, उसमें भी "रक्षिता" आती है । प्रस्तुत उपन्यास की नीलिमा एक आई.ए.एस. की पत्नी, सुशिक्षिता तथा जागरूक और बुद्धिजीवी महिला है । किन्तु दूसरी तरफ वह एक राजनीतिज्ञ सहायबाबू की प्रेमिका भी है, जिसे कुछ लोग सहायबाबू की रक्षिता भी कह सकते हैं । नीलिमा आर्थिक दृष्ट्या सहाय पर निर्भर नहीं है, अतः उसे विशुद्ध रूप से "रक्षिता" की कोटि में रखना मुश्किल है, तथापि नीलिमा-सहाय के ऊष्मापूर्ण संबंधों का लाभ उसके पति धर बाबू को प्रकारान्तर से मिलता तो है ही, तो इसे क्या कहा जाय ?

नीलिमा एक अद्भुत नारी-चरित्र है । डा. भारतभूषण अग्रवाल नीलिमा के चित्रण पर मुग्ध हैं । उनके कथनानुसार "नीलिमा में उन्होंने / जैनेन्द्र बाबूने / पहली बार आधुनिका का विवेकपूर्ण चित्रण किया है ।"[8] सहायबाबू के साथ नीलिमा के विवाह-पूर्व और विवाहेतर जो सम्बन्ध हैं, उनको लेकर उसके मन में किसी प्रकार की द्विधा या कुण्ठा नहीं है । उसके पति धर को भी इसका पता है और उन दोनों के बीच में एक अलिखित अनुबंध है कि वे परस्पर के कार्य-व्यापारों में किसी प्रकार की दखलअन्दाजी नहीं करेंगे । उनके बीच का यह सम्बन्ध कैसा है, उसमें कहीं शारीरिक संबंध भी है या केवल बौद्धिक मैत्री मात्र, उसका भी कोई संकेत लेखक ने नहीं दिया है । नीलिमा के संदर्भ में सहायबाबू एक स्थान पर कहते हैं — "समझ नहीं पाता कि नीला की शक्ति क्या है । पर शक्ति का अनुभव करता हूं । साथ होता हूं तो लगता है वातावरण उससे बनता है, मुझसे नहीं । परिस्थिति में जो मोड़ आता है उससे आता है ।"[9]

नीलिमा सहाय के लिए प्रेरक बल है, वह उनकी प्रेरणा है। कामराज नादर योजना के तहत सहाय जब राजनीति छोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं, तब नीलिमा उनको टोकते हुए कहती है — "तुम नहीं लौट सकते" — इस कहने में मुझे कौन-सा राज मिल जाता है। लेकिन पुरानी बातें याद करो। तुममें सपने थे और तुम्हारी नज़र में उन सपनों को मैं अपने तईं देखने लगती थी। आदमी सपने के लिए जीता है और औरत उस सपने के आदमी के लिए जीती है।" [10] निर्मोही हो रहे सहाय को पुनः सक्रिय राजनीति में लाने के लिए नीलिमा सूरजकुण्ड में स्नान का आयोजन करती है। तब सहाय उसके साथ जाने से कतराता है, क्योंकि सहाय जानता है कि एक बार वह नीलिमा के साथ गया तो उसके आकर्षण के बहाव को रोक पाना उसके लिए मुश्किल होगा। तब नीलिमा मानो उस पर व्यंग्य करते हुए कहती है — " मुझे नहीं मालूम था कि तुम कायर निकलोगे, जो स्त्री से अपने को बचाता है, वह सचसे अपने को बचाता है, स्त्री झूठ नहीं है और पुरुष के लिए सच की चुनौती स्त्री के रूप में आती है।" [11]

यहाँ हम देख सकते हैं कि नीलिमा सहाय को "तुम" से सम्बोधित करती है। इससे उन दोनों के सम्बन्धों की घनिष्ठता का पता चलता है। नीलिमा विवाहित है, लेकिन वह सहाय की प्रेमिका और प्रेरणा भी है। सहाय भी विवाहित हैं और उनको बच्चे भी हैं। सहाय की पत्नी राजश्री (राजी) भी इन सम्बन्धों से अवगत है और वह भी नीलिमा को अपनी सखी मानती है। नीलिमा को लेकर राजी के मन में कोई कुण्ठा या नाराजी का भाव नहीं है, सौतिया भाव भी नहीं है।

सहायबाबू राजनीतिज्ञ हैं, पर आज के राजनेताओं की तरह घाघ, बेशरम और भ्रष्ट नहीं है। गांधीवाद का जादू अभी उन पर विद्यमान हैं। राजनीति के दाव-पेंच और छल-छद्म से वे बुरी तरह से ऊब चुके हैं और फलतः कामराज नादर योजना के अन्तर्गत निवृत्त होकर गाँव जाकर प्रकृति की गोद में निर्द्वन्द्व और निर्भ्रान्त

जीवन व्यतीत करना चाहते हैं । सहाय में इस प्रकार के दौरे आते रहते हैं और तब ठाकुर (मित्र और समर्थक) , नीलिमा या भानु-प्रताप (एक दूसरा राजनीतिज्ञ) उनको किसी तरह घेर-घारकर राजनीति के बाड़े में ले आते हैं । अबकी बार राजी , उनका पुत्र और पुत्री ~~अंजलि~~ अंजलि ये सभी चाहते हैं कि बाबूजी मंत्रीपद पर बने रहें , क्योंकि उनके अपने निहित स्वार्थ हैं , जिनकी पूर्ति उनके मंत्रीपद पर बने रहने से ही हो सकती है । अंततः नीलिमा ही उसमें सफल होती है ।

नीलिमा और सहाय का प्रेम गहरा है , केवल शारीरिक या यौन नहीं , बल्कि आत्मिक । अतः इन सम्बन्धों को लम्पटता नहीं कह सकते । उनमें बौद्धिकता , संवेदनशीलता , गहरी समझदारी और विश्वास है । यही कारण है कि राजश्री इन सम्बन्धों ~~को~~x को लेकर चिन्तित नहीं है , बल्कि कई बार तो वह खुद ही सहायबाबू को नीलिमा के पास भेजती है । एक स्थान पर राजी नीलिमा के बारे में कहती है —" नीलिमा हम-तुम जैसी नहीं है । आज़ाद ख़याल हैं , इससे लोग जो चाहें समझें । लेकिन मैं तुम्हें कहती हूं कि वह तुम्हें कभी नीचे खींचना नहीं चाहेगी । ... उसके मन में खोट नहीं है । स्वारथ भी नहीं है । वह स्त्री ऊंचे दर्जे की है । नहीं तो यहां मिलने क्यों आतीं , सीधे अपने होटल नहीं जा सकती थी ? और वैसी होतीं तो तुमको लेकर मुझसे खुला मजाक कर सकती थीं ?" 12

सहायबाबू को फटकारने का माद्दा भी नीलिमा रखती है —" मेरा शरीर क्या मेरा अपना नहीं है ? क्या मैं उसके साथ सहज नहीं हो सकती ? सूर्यस्नान झूठ नहीं था , उसकी जगह पूरा प्रकृति-स्नान भी हो सकता था । क्यों , क्या मुझे इसका हक नहीं है ? किसीका मन डोलता है , क्या इसीलिए मेरा हक कम हो जाता है ? देखो सहाय , तुम लोग इज्जतों में और पर्दों में रहकर , जाने किन-किन व्यर्थताओं को अपने साथ लपेट लेते हो और उनमें गौरव मानते हो । यह सब तुम लोगों की झूठी सभ्यता है , ढकोसला है । फिर कहते हो हम सच पाना चाहते हैं । तुम्हारा सच कपड़ों में है , लिबास

में है, और सच्चाई से डरने में है।" [13]

अतः नीलिमा को किस वर्ग में रखा जाए यह समस्या तो बनी ही रहती है। एकदम प्योरिटियन लोगों के दृष्टिकोण से देखा जाए तो उसे हम सहायबाबू की "रक्षिता" कह सकते हैं। पंडित नेहरू अपने स्त्री मित्रों को लेकर काफी बहु चर्चित रहे हैं। किसी जमाने में मोरारजी देसाई और तारकेश्वरी सिन्हा में भी गहरी दोस्ती थी। आजकल के राजनीतिज्ञ तो लम्पटता की हद तक उसमें लिप्त है। अभी कुछ दिन पहले भाजपा के सांसद बाबूभाई कटारा "कबूतरबाजी" में पकड़े गए हैं। [14] राजनीतिक सर्कल में तो उसे " स्पेयरव्हील " की संज्ञा दी जाती है। आजकल व्यंग्यात्मक ~~शैली~~ में भाषा में पत्नी तथा प्रेमिका या प्रेयसी के लिए क्रमशः "लैण्ड-लाइन-फोन " और "मोबाइल" जैसे शब्द भी प्रचलित होने लगे हैं।

§3§ व्यतीत :
===========

"व्यतीत" भी जैनेन्द्रजी का उपन्यास है। यह एक आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। उसकी मुख्य कथा के साथ वेश्या-समस्या का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुख्य कथा तो असफल प्रेम की है। उपन्यास का नायक जयंत अनिता से प्रेम करता है, परन्तु अनिता से उसका विवाह नहीं हो पाता है। जयंत एक प्रतिभाशाली युवक है, काम्पीटीशन में बैठना चाहता था, पर प्रेम में मिली असफलता के कारण वह गुमराह हो जाता है। वह चन्द्रकला § चन्द्री § नामक युवती से विवाह भी करता है, किन्तु अनिता को लेकर उसके मन में जो गांठ है, उसके कारण वह चन्द्री को प्रेम नहीं कर पाता है। अनिता और चन्द्र उपन्यास के मुख्य नारी-पात्र हैं। गौण नारी-पात्रों में उदिता, नीला और बुधिया आदि हैं। हमारे आलोच्य विषय का सम्बन्ध बुधिया से है।

गौण पात्र होते हुए भी बुधिया की गणना हम जैनेन्द्रजी के

* Plese note that page no. 232 is missplesed in the binding.

कहाँ । दुनिया जो उन्हें मारती है । मैं शिकायत नहीं करती , लेकिन तन कई बार बहुत बहुत पीर दे आता है । ... ऐसा होता है , तन नहीं देता काम , तभी लौटालती हूं । नहीं तो बेईमान लोग हम नहीं है ।"[15]

जयंत का सिर इस लड़की की महानता के आगे मानो झुक जाता है । हमारे शास्त्रों में शरीर को मिट्टी कहा गया है , और अठारह साल की इस अनपढ़-अबोध लड़की ने इस सत्य को आत्मसात् कर लिया है । मन उसका अपना है , लेकिन " उसका तन उसका नहीं है । जैसे उसका छोड़ सबका है ।" [16] "त्यागपत्र" उपन्यास में एक स्थान पर प्रमोद कहता है —" मैं अंडरग्रेजुएट उनकी कुछ भी बात नहीं समझ सका । आज वे बातें मुझे याद आती हैं और निश्चय हो गया है कि सचमुच जो शास्त्र से नहीं मिलता , वह ज्ञान आत्म-व्यथा में मिल जाता है ।" [17] बुधिया को भी आत्मव्यथा ने बहुत-कुछ सिखला xxxxxxxx । जिस प्रकार मृणाल में निर्विरोध और निर्वैर मिलता है , अपना शोषण करने वालों के प्रति भी , बुधिया में भी कोई विरोध नहीं मिलता । उसका बाप उसके शरीर का सौदा करता है , पर उसके लिए भी उसके मन में घृणा या नफ़रत का भाव नहीं है । वह सोचती है कि उसका बाप परि-स्थितियों का मारा हुआ है , दुनियावालों का मारा हुआ है , अतः वह उसे यदि मारता है तो अपनी भड़ास ही निकालता है । इस प्रकार बुधिया मानो मृणाल का ही प्रतिरूप है । डा. xxxxxxxx बिजलीप्रभा प्रकाश के मतानुसार मृणाल और बुधिया की चारित्रिक बुनावट में अत्यधिक समानता दृष्टिगोचर होती है —" तन की असारता का जीवनदर्शन लेकर बुधिया हमारे सामने आती है । "त्यागपत्र" में मृणाल भी यही दर्शन हमारे सामने रखती है । मृणाल ने भी मन न देकर तन दिया है । बुधिया भी अपने पिता के पैसों का ऋण चुकाने के लिए बिना मन दिए तन देती है ।" [18] बुधिया में मानवता के प्रति करुणा और सिर्फ करुणा मिलती है । अपने तन के सौदे के लिए उसके मन में किसी प्रकार का अपराध-बोध भी नहीं है , बल्कि पैसे लेकर तन न देना उसे वह बेईमानी

अमर और महान नारी-पात्रों में कर सको हैं । बुधिया को हम विशुद्ध रूप से वेश्या के वर्ग में रख सकते हैं । पर वेश्या होते हुए भी यह लड़की बहुत ही मासूम और निर्दोष है । उपन्यास में उसकी चर्चा बहुत कम हुई है और उपन्यास की कथा का ब्रूब्रूह× लक्ष्य भी वह नहीं है । पर
लक्ष्य भी
जितनी भी कथा आयी है, बुधिया पाठक पर एक अमिट छाप छोड़ जाती है । बुधिया को देखकर "त्यागपत्र" की मृणाल एक बार फिर स्मृतिपटल पर छा जाती है ।

शैलेश और मण्टो के बहुत से नारी पात्र स्मृति में कौंधने लगते हैं । वह सुन्दर है, युवती है, बल्कि किशोरी कहना चाहिए । मां को बचपन में ही खो चुकी है । बाप मजदूर है, लेकिन शराब-ताड़ी में सबकुछ फूंक देता है । शराब-ताड़ी की लत और तड़प ऐसी बुरी है कि उसके वास्ते वह बेटी के शरीर का सौदा भी करने लगा है । बुधिया बहुत ही सहनशील है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसे हम आत्मपीड़क-चरित्र (मैशोइस्ट कैरेक्टर) की कोटि में रख सकते हैं । तिल-तिल जलते जाना-सुलगते जाना, दूसरों के लिए, पर उफ न करना । पिता की मार भी खाती है और मेहनत-मजदूरी तथा शरीर बेचकर उसकी जरूरतों को भी पूरा करती है ।

उपन्यास के नायक जयंत को बुधिया से सहानुभूति है । एक दिन वह देखता है कि गली में काफी हंगामा मचा हुआ है, शोर मचा हुआ है । बात यह थी कि बुधिया के बाप ने दो लोगों से एडवान्स में पैसे ले लिये थे और अब वे दोनों जानवर बने उसके शरीर को रौंधने के लिए उसे ढूंढ रहे थे । हकीकत मङ्ब्लूम मालूम होने पर जयंत उन लोगों के पैसे लौटा देता है और बुधिया को बुलाकर वह इस सम्बन्ध में पूछता है, तो वह स्पष्ट रूप से बता देती है — " दादा, हर किसीसे पैसा ले लेते हैं और जाके ताड़ी में फूंक देते हैं । मां गई तब से यही हाल है । मैं अपने बस किसीको नहीं लौटालती । लेकिन दादा शकल देखते ही मारने ह्रेह्लेह×ह्रै× लग जाते हैं । ठीक है, मुझे ही न मारें तो जाएं

कहती है । बुधिया में वेश्यापन का हीनताबोध भी नहीं है । उपन्यास के अंत में कुछ संकेत मिलते हैं कि जयंत की संगत में बुधिया का बाप सुधर जाता है और उसमें एक किस्म का उत्तरदायित्व-बोध उत्पन्न होता है । यथा —" बचाकर कुछ पैसा उसने {बुधिया के बाप ने} जोड़ लिया है । बुधिया की मां की और उसकी बेटी के ब्याह की बात उसे लग गई है । पर उधार से अपनी इकलौती बेटी का ब्याह करेगा ? नहीं , कभी नहीं .... । बुधिया तो मेरे पैरों पड़ गई । समझती है कि उसके दादा जो बदल गए हैं , सो जादू मेरा है । नहीं तो ताड़ी में ही जान खोते । ... बुधिया को देखा , बदन वही है , लेकिन आंखों में चिन्ता की जगह चितवन है ।"[19]

{5} दशार्क :
==========

"दशार्क" जैनेन्द्रजी का अंतिम उपन्यास है ।[20] इस उपन्यास के संदर्भ में स्वयं जैनेन्द्रजी उपन्यास की भूमिका " मेरी बात" में कहते हैं —" पुस्तकका "दशार्क" नाम विचार से नहीं , संयोग से बना । आशय बाद में निकाला गया । हुआ यह कि एक बंधु ने कहा , दश कहानियां लिखकर देनी है , दीजिए वचन । ... दश तो खैर , नाम में ही है , और "अर्क" किरण को कहते हैं , धूप एक है , किरण असंख्य । सोचा कि चलो दश कहानियां ऐसी दी जायें कि वे दश हों , पर एक भी हों । इसलिए नाम वह "दशार्क" गांठ बनकर मन में बैठ गया । गांठ इसलिए कि उस शब्द के अन्त में "शार्क" की ध्वनि है । "शार्क" से एकसाथ दारुण-सा चित्र उभर पड़ता है । शब्द का सूझना था कि तय हो गया कि "शार्क" को अवतरित करना होगा ।"[21] उपन्यास की नायिका रंजना ही वह "शार्क" है — मछलियों की रानी , शिकारी रानी । डा. विष्णु खरे ने जैनेन्द्रजी के संदर्भ में लिखा है —" चिंतक और दार्शनिक जिज्ञासा के तहत कायदे से देखा जाय , तो जैनेन्द्र को हिन्दी का एक असफल उपन्यासकार होना चाहिए था । लेकिन उन्होंने चमत्कार किया और वे भारत के सर्वाधिक चर्चित कथाकार बन गये ।

जैनेन्द्र मूलतः तथाकथित नारी-मन और नारी-जीवन के पहले उपन्यास-कार हिन्दी में , और उनकी नारी तथा उसका मनोविज्ञान प्रेमचन्द की नारी से बिलकुल भिन्न था । प्रेमचन्द के यहां औरत मूलतः हिन्दू है और सती-साध्वी है । विद्रोहिणी तो बहुत ही कम है और हमेशा अन्याय की शिकार है । इस बात पर बहुत कम ध्यान दिय T गया है कि प्रेमचन्द की कहानियों में स्त्रियों ने न बीसियों की तादाद में आत्महत्या की है , जबकि जैनेन्द्र की नायिका के सारे सामाजिक ताने-बाने को तहस-नहस करने के लिए वेश्या बन जाने को भी नारी की चरितार्थता मानती है । नारी की ऐसी "अहिन्दू" , अभारतीय तस्वीर उकेरना और फिर भी साफ बच निकलना यह जैनेन्द्र के अदभुत पराक्रमों में से एक है । लेकिन इसके लिए उन्होंने जो रणनीति अपनायी वह भाषा और शिल्प के अभूतपूर्व इस्तेमाल में छिपी हुई है । अधिकांश हिन्दी साहित्यकार अपनी गिली-गिली भावुकता और बौद्धिक ~~दरश्रेदय~~ दारिद्य को छिपाने के लिए "प्रगतिात्मक " भाषा का इस्तेमाल करते हैं । जैनेन्द्र ने बम को मखमल में लपेटनें का काम किया । उन्होंने एक ऐसा गद्य दिया जो बहुत मृदु , कोमल , यहां तक कि स्त्रैण भी लग सकता है । लेकिन उसके जरिये ऐसे नारी पात्रों के लिए सहानुभूति , समझ और स्वीकार अर्जित किए , जिन्हें जोला या कुप्रिन की शैली में सिर्फ जुगुप्सा और तिरस्कार ही मिलता ।" [22]

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका एक ऐसी नारी है जो समर्थ से समर्थ कथाकार के लिए चुनौती हो सकती है । "जिस्मफरोशी" तो सुना है , "इश्कफरोशी" की बात कुछ अनहोनी-अदभुत-सी लगती है । "दशार्क" की रंजना को लेकर भी "सुनीता" की भांति हिन्दी उप-न्यास-जगत में कई-कई सवाल खड़े हुए थे और लेखक को भी उन सवालों के रूबरू होना ~~पड़ेर~~ पड़ा था , क्योंकि रंजना एक विलक्षण नारी पात्र है , जैनेन्द्र के अब तक के नारी-पात्रों में कुछ अलग । रंजना "शार्क" है , शिकारी है । उसे किसी बने-बनाए चौखटे में फिट करना मुश्किल है । उपन्यास जब प्रकाशित हुआ था , एक पाठक ने लेखक से

सीधे-सीधे पूछा था—" क्या रंजना के रूप में आपने एक वेश्या को ही सम्मान देने की कोशिश नहीं की है ? क्या "कालगर्ल" को आप प्रतिष्ठित करना चाहते हैं ? " जैनेन्द्र का उत्तर था — " रंजना न वेश्या है , न कालगर्ल ।[23] सामान्य जिस्मफरोशी का व्यवसाय करनेवाली वेश्या या कालगर्ल से रंजना अलग है । वह शरीर को , शरीर के सौन्दर्य और आकर्षण को स्त्री का मूलधन समझती है । और फलतः उसे सुरक्षित व पवित्र रखती है । वह प्रेम , करुणा और मैत्री द्वारा गृहस्थी से ऊबे हुए लोगों का उपचार करती है । इसकी अवधारणा पश्चिम में एक दूसरे धरातल पर मिलती है । वहां कुछ ऐसी "प्रोफेशनल्स" महिलाएं होती हैं , जो गृहस्थी की ऊब को मिटाकर , पुरुषों में पुंसत्व फूंकने का काम करती हैं । दो प्रकार का नपुंसकत्व (Impotancy) होता है — नैसर्गिक और मनोवैज्ञानिक । नैसर्गिक नपुंसकत्व को तो दूर नहीं किया जा सकता , किन्तु जो मनोवैज्ञानिक नपुंसकत्व होता है , उसे मनोवैज्ञानिक उपचार द्वारा दूर किया जा सकता है । " मछली मरी हुई " का निर्मल पद्मावत और "रेखा" उपन्यास का प्रोफेसर प्रभाशंकर इस प्रकार के नपुंसक है । कई पुरुष ऐसे होते हैं कि अपनी पत्नी के पास वे पुंसत्व का अनुभव नहीं करते , वे ही पुरुष किसी अन्य स्त्री के सामने ऐसी कमजोरी का अनुभव नहीं करते । ऊपर जिन महिलाओं का उल्लेख किया गया है वे ऐसे पुरुषों में पुंसत्व की चिनगारी फूंकने का काम करती हैं । इसके लिए वे बाकायदा अपनी फीस भी वसूल करती हैं । किन्तु जैनेन्द्रजी की रंजना-विषयक अवधारणा इनसे भी पूरी तरह मेल नहीं खाती हैं । क्योंकि ये महिलाएं शरीर के माध्यम से ही ऐसा करती हैं , जबकि रंजना अपने अशरीरी प्रेम द्वारा इसे संपादित करती है । रंजना सुशिक्षित है , संस्कृत (cultured) और कला-मर्मज्ञ है । प्राचीन काम-कलाओं का उसे पूर्ण ज्ञान है । वह स्त्री-सौन्दर्य का , उसकी कोमलता और कामुकता का भरपूर प्रयोग करती है । इस अर्थ में वह आधुनिक है , परन्तु कहीं भी , लेश मात्र भी , वह क्षरित या स्खलित नहीं होती । अपनी शारीरिक-शुचिता बनाए

रखती है । सम्पूर्ण उपन्यास में उसके यहां आनेवाले पुरुष ग्राहकों के साथ-साथ पाठकों का भी "सिमरिंग" होता रहता है ।

रंजना का अपना पूर्व-जीवन का नाम है -- सरस्वती । वह एक ऐसे बुद्धि-संपन्न लेक्चरर की पत्नी थी जिसने युनिवर्सिटी में "टोप" किया था । सात साल तक पत्नीत्व को निभाया , मानो एक-एक फेरे के लिए एक-एक साल । एक पुत्र की मां भी बनीं , किन्तु जब देखा कि विवाह का निभना मुश्किल होता जा रहा है , तो उसे जबरदस्ती खींचते जाने की विवशता के स्थान पर उसे त्यागना ही श्रेयस्कर समझा । और वह सरस्वती से रंजना बन गई । शेफाली जो सामाजिक कार्यकर्त्री है , उसके सम्मुख रंजना अपनी बात यों कहती है --

" हम स्त्रियों के प्रति अगर पुरुष में आकर्षण सिरजा गया है तो स्त्री मूर्ख होगी अगर वह लाभ उठाने की न सोचे । पत्नी बनकर स्त्री वह अवसर खो देती है । वश में आ जाने के बाद आकर्षण समाप्त हो जाता है और स्त्री को जो शक्ति परमेश्वर की ओर से मिली है , वो वृथा हो जाती है । कानून तो पुरुषों का बनाया है । इसीलिए मुझे साइनबोर्ड की जरूरत हुई । देखिए न , कानून यों अवैध ठहराता है , पुरुष उसीकी अभ्यर्थना के लिए खिंचा चला आता है । इसलिए मैं अगर पुरुष की आदर्शवादिता की बहक में न आकर , उसकी वास्तविकता को पहचानती और उसका आदर करती हूं तो उसमें क्या अन्यथा है । पुरुष को यदि रंजन चाहिए तो उसीके हित में क्यों न मुझे रंजना बन जाना चाहिए ?" [24]

अपनी इस प्रवृत्ति को वह पूर्णतया नैतिक समझती है । और प्रेम द्वारा उपार्जित इस धन को परोपकार में लगाती है । रंजना का व्यक्तित्व तेजस्वी , दुर्धर्ष , साहसी और पुरुष के प्रति करुणार्द्र है । वह आधुनिक होते हुए भी प्राचीन और प्राचीन होते हुए भी आधुनिक है । पुरुष , समाज , व्यवस्था आदि से कटकर वह यहां आयी है ; अतः इन सबके प्रति उसके मन में वितृष्णा का भाव होना चाहिए था ,

नफ़रत होनी चाहिए थी । किन्तु कहा न रंजना किसी और मिट्टी की बनी हुई है । उसके मन में कोई घृणा , कोई वितृष्णा , कोई पूर्वाग्रह नहीं है । वह अपने मन की स्लेट को बिलकुल धो-पोंछकर आयी है । सबकी ओर से अपना दिल साफ करके , वह प्रेम , और केवल प्रेम देने आयी है । वह जानती है , इस जगत में अगर कमी है , तो केवल प्रेम की कमी है । जगत की कठोरता को प्रेम की नमी से ही दूर किया जा सकता है । ऐसे लोग बहुत कम होते हैं , पर होते ही नहीं है , ऐसा भी नहीं है । तभी तो जैनेन्द्र को हु संभावनाओं का कलाकार माना जाता है । [25]

यह कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र के [illegible] पात्रों में रंगों का अधिक वैविध्य नहीं होता है । वे अपने पसंदीदा तीन-चार रंग उठाकर कुछ-न-कुछ पेइण्ट करते रहते हैं । लेकिन जैनेन्द्र के यहाँ रंगों के "शेड्ड्ज़" का गज़ब का वैविध्य है । मृणाल , सुनीता , रंजना सुखदा , नीलिमा , अपरा आदि एक रंग के पात्र हैं ; [26]लेकिन "शेड्ड्ज़" बदल जाते हैं । "दशार्क" की रंजना भी उसी रंग में , किन्तु एक अलग "शेड्ड्ज़" में निर्मित नारी है । एक स्थान पर वह वेश्याओं को सम्बोधित करते हुए कहती है — " मेरा कहना है कि विवाह धर्म है , समाज धर्म है , गृहस्थ धर्म है । पर धर्म प्यार भी है और वह बड़ा इसलिए है कि समष्टि धर्म है , भागवत धर्म है । ... वह [पत्नी] प्रेम-धर्म नहीं जानती । बस शरीर-धर्म पालती है । तो इतना तो प्रकृति का धर्म हुआ कि बाल-बच्चे हो गये । यह तो जानवरों में भी होता है । फिर आदमी और जानवरों में फर्क क्या ? फर्क यह है कि आदमी भोग की भूख को ही प्रेम नहीं [illegible] मानता । शरीर पर प्रेम खत्म नहीं है । ... इस तन की मरद को प्यास है और बहुत-सी [illegible] औरतें वैसे ही जीती हैं । लेकिन मैंने पाया कि तन से भी ज्यादा कुछ प्यास है जो मन की है । प्यास की उस तरस को कोई नहीं पूछता । ... मैंने उसे समझा और पाया कि उस प्यास में प्राणों के रोग का गहरा

इलाज भी है । वह इलाज मुझसे मिलता है ‖ ऐसे पुरुषों को ‖ और पैसा अपने आप मुझ तक आता है । "[27] मतलब कि कहीं जमीं तो कहीं आसमां नहीं मिलता । पत्नी में पुरुष को एक गृहिणी मिल जाती है, अपने बच्चों की मां मिल जाती है, वक्त-बेवक्त पेट्ट की भूख मिटाने के लिए एक "योनि" मिल जाती है; परन्तु पुरुष की प्यास केवल इतने - भर से नहीं छिपती । उसे एक सौन्दर्यमय मैत्री चाहिए । और रंजना यही करती है । अब उसके लिए कोई "प्योरीटियन" उसे वेश्या, चाहे तो कह सकता है । और यह भूख फक्त पुरुषों में ही होती है, ऐसा नहीं है । मृदुला गर्ग के उपन्यास "चित्तकोबरा" और "उसके हिस्से की धूप" में इसे भी रेखांकित किया गया है ।

एक अन्य स्थान पर रंजना कहती है —" वेश्या स्त्री का नाम नहीं है । वह व्यवसाय है । मैं स्त्री के नाते अनुभव करती हूं कि स्त्री माल-असबाब नहीं है । उसने व्यवसाय की चीज़ जिसने बनाया, पातक वहां है । सोचने पर मैंने पाया कि वह चीज पैसा है, और उसमें डाल दी गई है क्रय-शक्ति । एक शब्द में बाजार है, हमारी अर्थ-व्यवस्था है । हूं, तो मेरा पहला धर्म हुआ कि मैं कहूं कि नारी-तन पवित्र है । वहां से मानव-शिशु को जन्म मिलता है । वो सृष्टि तीर्थ है । प्रेम में अर्पण हो सकता है उसका । पैसे पे बिक्री नहीं हो सकती ।" [28] और क्या लगभग ऐसा ही नहीं कहती "त्यागपत्र" की मृणाल । यथा —

" जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है; यह मेरी समझ में नहीं आता । तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूं । तन दे सकूंगी, शायद वह अनिवार्य हो । पर लेना कैसे ? दान स्त्री का धर्म है । नहीं तो उसका और क्या धर्म है ? उससे मन मांगा जाएगा, तन भी मांगा जाएगा । सती का आदर्श और क्या है ? पर उसकी बिक्री — न, न, यह न होगा ।" [29]

तो मृणाल और रंजना के चरित्र का "रंग" एक है;

परिस्थितिजन्य "शेड्स " अलग-अलग हैं ।

(5) मैला आंचल :

" मैला आंचल " फणीश्वरनाथ रेणु का सुप्रसिद्ध उपन्यास है । आंचलिक उपन्यास का सूत्रपात इसी उपन्यास से माना जाता है । यदि हिन्दी के दश सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों का चुनाव करना हो , तो कदाचित् इस उपन्यास को लेना पड़े । इसमें बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गांव को लिया गया है और सामाजिक , धार्मिक , राजनीतिक , आंचलिक आदि कई परिप्रेक्ष्यों में उसका अध्ययन होता रहा है । हमारा उपक्रम यहां केवल अपने प्रतिपाद्य विषय को केन्द्रस्थ करने का रहेगा ।

जिसे प्रकटतः वेश्यावृत्ति कहा जाए ऐसा कोई प्रसंग और पात्र तो यहां है नहीं ; किन्तु पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम वेश्याओं के अप्रकट स्वरूप की चर्चा कर चुके हैं , इस प्रकार की स्त्रियां हमें यहां उपलब्ध होती हैं । वेश्याओं की जो परिभाषाएं मिलती हैं और जिनकी भी चर्चा हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं , उस दृष्टि की वेश्याएं यहां नहीं है , किन्तु परोक्ष रूप से आर्थिक लाभ या आजीविका हेतु कई स्त्रियों को , न चाहते हुए भी अन्य पुरुषों से यौन-संबंध रखने पड़ते हैं । ऐसी स्त्रियों को हम वेश्याओं के अप्रकट स्वरूप में रखते हैं और इस कोटि की वेश्याएं हमें प्रस्तुत उपन्यास में दृष्टि-गोचर होती रही हैं । विवाहेतर अवैध संबंध को अब यदि वेश्यागिरी कहा जाए , तो ऐसी वेश्यागिरी के कई चित्र उपन्यास में मिलते हैं ।

बकौल रेणु के "मैला आंचल " में फूल भी हैं , शूल भी हैं , धूल भी है , गुलाल भी है , कीचड़ भी है , चन्दन भी है , सुन्दरता है तो कुरूपता भी । " [29]

पूर्ववर्ती पृष्ठों में हमने धार्मिक वेश्याओं की भी चर्चा की है । वेश्या भला धार्मिक कैसे हो सकती है ? किन्तु यह नाम सुविधा के लिए दिया गया है । धर्म की आड़ में जहां वेश्यावृत्ति होती है , वहां

हमने यह नाम दिया है । प्रस्तुत उपन्यास में लक्ष्मी कोठारिन नामक एक सधुआइन का पात्र है । लक्ष्मी कोठारिन और महन्त सेवादास के बीच अवैध सम्बन्ध है । सेवादास का चेला रामदास भी लक्ष्मी कोठारिन से फंसा हुआ है । बाद में लक्ष्मी कोठारिन बालदेव की ओर भी ढरकती है । मठ में अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए लक्ष्मी को न जाने कितने-कितने लोगों के साथ अवैध यौन सम्बन्ध रखने पड़ते हैं । मठ में मठ की सम्पत्ति से भी अधिक आकर्षक वस्तु तो लक्ष्मी कोठारिन है, जिसे पाने के लिए अनेक साधु-वैरागी लालायित रहते हैं । लरसिंघ और नंगा बाबा भी लक्ष्मी के पीछे पड़े हुए हैं । मठों में ऐसी सधुआइनों को कई बार रखा ही इसलिए जाता×ह××××है कि वे मठ से जुड़े सभी लोगों का यौन-एण्टरटेन करे । नागार्जुन कृत उपन्यास "इमरतिया" में तो ऐसी अनेक सधुआइनें मिलती हैं ।

माँ-बाप की जानकारी में गांव की निम्न जाति की खेतिहर और मजूर लड़कियाँ उच्च जाति के लड़कों के साथ अवैध-यौन संबंध ×है रखती हैं । उन लड़कियों की माँ के सम्बन्ध इन लड़कों के पिताओं और पितामहों से रहता था । इस प्रकार यह गोरखधंधा पिढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता था । यहाँ भी कारण गरीबी और अस्तित्व रक्षा का रहता था । निम्न जाति की स्त्रियों पर तो मानो ये सामन्त और जमींदार अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे । ऐसे अवैध सम्बन्ध केवल निम्न जाति की स्त्रियों के ही रहते थे, ऐसा नहीं है । कई बार उच्च जाति की स्त्रियां भी ऐसे सम्बन्धों में लिप्त मिलती हैं । प्रस्तुत उपन्यास में हम देखते हैं कि उच्चजाति के लोग विद्यापति नाच में भाग लेते हैं और तभी ऊंचे घर की बहुओं के साथ उनके नौकरों के प्रेम-लीलाएं चलती हैं । ये उच्च जाति की स्त्रियां इन नौकरों का इस्तेमाल अपनी हवस-पूर्ति के लिए करती हैं । इन नौकरों को हम "पुरुष वेश्या" (Male-Prostitute) की संज्ञा दे सकते हैं । डा. रामदरश मिश्र के उपन्यास "जल टूटता हुआ"

तथा " सूखता हुआ तालाब " में ऐसे कई प्रसंग मिलते हैं । "जल टूटता हुआ" उपन्यास में हरिजन-कन्या लवंगी का भाई हँसिया पार्वती नामक एक उच्च जाति की लड़की के साथ आशनाई करते हुए पकड़ा जाता है । तब उसकी बहुत बुरी तरह से पिटाई होती है । लवंगी इस बीच में कूद पड़ती है । उसका पुण्य-प्रकोप सबकी पोल खोल देता है । यथा —" क्या हुआ अगर मेरे भाई ने एक बामन की लड़की से भला-बुरा किया ? चमार का खून खून नहीं है ? बामन का खून ही खून है ? हमारी कोई इज्जत नहीं होती क्या ? बामनों की ही इज्जत होती है ? ... जब चमरौटी की तमाम लड़कियों पर ये बाबा लोग हाथ साफ करते हैं तो कोई परलय नहीं आती और कोई चमार बामन की लड़की को छू ले तो परलय आ जाती है ।" 30

" मैला आँचल " का प्रकाशन सन् 1954 में हुआ । उसमें आज़ादी पूर्व की घटनाओं से लेकर आजादी के बाद के कुछेक वर्षों की घटनाओं का यथार्थ अंकन रेणु ने किया है । आजादी के बाद हमारे देश का क्या होने वाला है, सत्ता कैसे-कैसे लोगों के हाथों में जानेवाली है, किस प्रकार स्वाधीनता-संग्राम के समय के लोग हाशिये पर खिसकते जायेंगे और कैसे-कैसे भ्रष्ट लोग उनके स्थान पर आ जायेंगे उसका आकलन रेणु ने दो-चार वर्षों में ही कर लिया था । किन्तु हमारा यहाँ सरोकार "मैला आँचल" में चित्रित "वेश्या-वृत्ति" से है, जिसका कुछ संकेत हम ऊपर कर चुके हैं ।

लेखक ने मानव-जीवन की कुत्सित प्रवृत्तियों का भी वस्तुगामी चित्रण किया है । उसमें नैतिकता-अनैतिकता के पचड़े में वे पड़े नहीं हैं । ऊपर बताया गया है कि महन्त सेवादास, रामदास, लरसिंघ और नंगाबाबा ये सब लक्ष्मी के पीछे पड़े हुए हैं । स्वयं लक्ष्मी बलदेव पर आसक्त है । रमपियरिया की माँ सात बेटों के बाप छीतम से फंसी है । फुलिया माँ के आग्रह और सहमति से सहदेव मिसिर की आग बुझाती है । इस सम्बन्ध में रमजूदास की पत्नी फुलिया की माँ से

कहती है — " तुम लोगों को न तो लाज है, न शरम ! कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारी वाली साड़ी चमकाओगे ? आखिर एक हद होती है किसी बात की । मानती हूं कि जवान बेवा बेटी दुधार गाय के बराबर है । मगर इतना मत दुहो कि देह का खून ही सूख जाय ।" 31

वस्तुतः यहाँ रमजूदास की पत्नी भी कोई दूध की धुली हुई नहीं है । वह जो कुछ कह रही थी वह ईर्ष्यावश कह रही थी । अतः फुलिया की माँ भी बिगड़ जाती है और वह भी उसकी सारी पोल-पट्टी खोल देखि×है×××× देती है कि वह क्यों अपने भतीजे के साथ भाग गई थी और गुअर टोली के ×××× कलक के साथ रात-रात भर रासलीला रचाती रहती थी । इस पर रमजू की स्त्री फुलिया की माँ को " सिंधवा की रखैली" कहती है ।

नोखे की स्त्री रामलगन के बेटे से फंसी हुई है तो उचितदास की बेटी कोयरी×××× टोली के सबटन महतो से । नया तहसीलदार हरगौरीसिंह अपनी ही मौसेरी बहन से "रासलीला" रचा रहा है । लरसिंघ लछमी के पीछे तो पड़ा ही है, वह सोनमतिया कहार की रधिया को भी उड़ा ले जाता है : जोतखीजी कालीचरण को चुनौती देते हैं कि वह अपनी माँ से पूछकर बताए कि वह किसका बेटा है । जोतखी-जी की इस बात पर भला कालीचरण कैसे चुकता ? वह उत्तर में कहता है कि वे अपनी पत्नी पत्नी से पूछें कि उसके पेट में किसका बेटा है ।32

कालीचरण भी चरखा मास्टरनी मंगलादेवी के प्रेमपाश में फंस जाता है, तो डा. प्रशान्त तहसीलदार की बेटी कमली से प्रेम-सूत्र में बंधकर विवाह-पूर्व ही शारीरिक सम्बन्ध जोड़ बैठते हैं । किन्तु ये प्रेम-कहानियाँ हैं । उसे वेश्यावृत्ति नहीं कहा जा सकता । किन्तु ऊपर जिन अवैध सम्बन्धों की चर्चा की है, उन्हें हम "प्रच्छन्न" प्रकार की वेश्यावृत्ति कह सकते हैं । सीधे पैसे भले न मिलते हों, किन्तु इन अवैध सम्बन्धों के पीछे आर्थिक-पक्ष तो रहता ही है । गाँवों के

जमींदार और उनके बेटे प्रायः अपने हलवाहों की औरतों के साथ इस प्रकार के सम्बन्ध रखते हैं । "मैला आँचल" के उपरान्त "जलटूटता हुआ" , "सूखता हुआ तालाब" ﴾ डा. रामदरश मिश्र ﴿ आदि ग्रामभित्तीय उपन्यासों में हमें इस प्रकार के अवैध-अनैतिक यौन-सम्बन्ध मिलते हैं । उनके मरद भी कई बार इन स्थितियों से वाकिफ़ होते हैं , परन्तु आर्थिक मजबूरी के कारण आँख आड़े कान करते हैं ; तो कई बार इसका प्रतिशोध लेने के लिए वे भी उनकी स्त्रियों पर हाथ साफ कर लेते हैं । वहाँ पहलकदमी उन स्त्रियों की ओर से होती है और अपनी अतृप्त यौनेच्छा की पूर्ति के लिए वे इन रास्तों पर चल पड़ती है ।

उपर्युक्त सभी उदाहरणों में आर्थिक-पक्ष किसी-न-किसी रूप में जुड़ा हुआ है , अतः उसे वेश्यावृत्ति कह सकते हैं ।

﴾6﴿ सूखता हुआ तालाब :

"सूखता हुआ तालाब" डा. रामदरश मिश्र का सन् 1972 में प्रकाशित उपन्यास है । " पानी के प्राचीर " तथा " जल टूटता हुआ" में ग्रामीण जीवन के टूटते-भहराते मूल्यों का जहाँ विस्तृत फलक में चित्रण हुआ है ; वहाँ प्रस्तुत उपन्यास में ग्रामीण जीवन की बढ़ती जटिलता , वहाँ फैल रही गन्दी काली विषैली राजनीति और इनके सहारे चल रही यौन-लीलाओं का मार्मिक , सशक्त और प्रतीकात्मक अंकन हुआ है । उपन्यास के अन्त में उसके आदर्शवादी नायक देवप्रकाश यह अनुभव करते हैं कि उनका यह शिकारपुर गाँव , गाँव के पुश्तैनी रामी-तालाब का ही प्रतीक है । " पहले इसका जल कितना स्वच्छ , कितना निर्मल रहता था । गाँव भर के सारे धार्मिक उत्सव वहाँ संपन्न होते थे । पर अब उसमें गन्दगी ही गन्दगी है । मल-मूत्र के विसर्जन से लेकर मछली मारने तक के सारे काम उसमें होते हैं । गाँव के इस सार्वजनिक तालाब को

शिवलाल तथा शामदेव जैसे कुछ लोग हथियाने का प्रयास भी कर रहे हैं और गांव का सम्पूर्ण जीवन भी क्या इन लोगों ने हथिया नहीं लिया है ? इस प्रकार "सूखता हुआ तालाब " ग्राम्य-जीवन के जल के सूखने की दर्दभरी कहानी है । " [33]

वैसे उपन्यास आज़ादी के बाद के गांव कांइयापन और टूटते-बहराते जीवन-मूल्यों पर आधारित है । जहां तक हमारे आलोच्य विषय का सम्बन्ध है उसमें "अप्रकट" प्रकार की वेश्यावृत्ति मिलती है । गाँवों में नगरों की तरह वेश्याओं के अलग विस्तार तो होते नहीं है, किन्तु कई औरतें अपने देह का व्यापार करती हैं, हालांकि उसके साथ खेतीहर मेहनत-मज़दूरी भी उन्हें करनी पड़ती है । उपन्यास में बताया है कि विधुर शिवलाल हमेशा अपनी हलवाइनों से फंसा रहता है । इसलिए शिवलाल ऐसे गरीब व्यक्ति को अपना हलवाहा बनाता है जिसकी औरत जवान और ख़ूबसूरत हो । पहले वह उसको कर्ज के बोझ के तले दबा देता है । कर्ज के बोझ के कारण हलवाहा चुपचाप उसकी औरत के साथ की यौन-लीला को बर्दाश्त कर लेता है । शिवलाल, दयाल तथा मास्टर धर्मेन्द्र ये तीनों चैनइया चमारिन से शारीरिक सम्बन्ध रखते हैं । शिवलाल से तो उसे गर्भ भी रहता है । शिवलाल उसे गर्भ गिराने के लिए बहुत दबाव डालते हैं, तब वह गांव छोड़कर चली जाती है, पर गर्भ नहीं गिराती है । इसके विपरीत कलावती और लीलावती जैसी ब्राह्मण-कन्याएं हैं जिनको जब-तब अपना गर्भ गिरवाना पड़ता है । गांव में गर्भ गिराने की इतनी घटनाएं होती है कि उपन्यास में हमें प्रेत का एक नया प्रकार मिलता है, जिसे "पेट मड़ुआ" कहा जाता है । अवैध गर्भ को जब पेट मांडकर गिरा दिया जाता है, तब गर्भस्थ शिशु जो प्रेत बनता है उसे "पेट मड़ुआ" कहते हैं । [34] गांव में एक कामरेड मोतीलाल है, उनका अपने अनुज की विधवा पत्नी (भयऊ) से सम्बन्ध है । उसका गर्भ भी गिराया जाता है । तब उक्त "पेट मड़ुआ" की बात आती है ।

इन यौन-लीलाओं का प्रयोग राजनीति में भी किया जाता है। शिवलाल की बेटी कलावती को मास्टर धर्मेन्द्र से गर्भ रह जाता है। तब शिवलाल के सुपुत्र रामलाल इसका दोष विरोधी दल के नेता देवप्रकाश के सुपुत्र पर डाल देता है। इस प्रकार नैतिक मूल्यों में इतनी गिरावट आ गई है कि लोगबाग छिपाने वाली बातों का प्रयोग भी राजनीति के लिए करते हैं। पहले ऐसी बातों पर खून-खराबा हो जाता था, अब लोग इसको भी राजनीति के हक में भुनाने लगे हैं।

किन्तु जब जैराम द्वारा पोल खुल जाती है कि उसमें रवीन्द्र का नहीं, अपितु मास्टर धर्मेन्द्र का हाथ है, तब रामलाल बड़ी बेशर्मी के साथ कहता है -" आं ~~अइंबइइलईं~~ गांववाले सालों की क्यों छाती फटती है ? धर्मेन्द्र भइया ने कुछ किया है तो मेरी ही बहन के साथ किया है न ?"[35] इससे ज्यादा बेहयापन और क्या हो सकता है। तभी तो देवप्रकाश कहते हैं -" क्या है मानवता ? क्या है मूल्य ? कुछ नहीं बचा है। बचा है केवल सुख-सुविधापरक समझौता ? तब तो कहीं कुछ भी विश्वसनीय नहीं, कहीं कुछ भी अटूट नहीं। कहीं कुछ भी मूल्य नहीं, आत्मीय नहीं।"[36]

इस प्रकार यहां भी जो वेश्यावृत्ति है, वह "मैला आंचल" की भांति "अप्रकट प्रकार" की है, प्रच्छन्न है।

{7} रेखा :
========

भगवतीचरण वर्मा द्वारा प्रणीत उपन्यास " रेखा " की नायिका रेखा को हम परंपरागत दृष्टि से वेश्या कह सकते हैं क्योंकि उसके जीवन में एक-एक करके पांच पुरुष आते हैं। रेखा भारद्वाज दिल्ली यूनिवर्सिटी की दर्शन की छात्रा है। रेखा दर्शन विभाग के विभागाध्यक्ष तथा प्रोफेसर प्रभाशंकर के विद्वतापूर्ण व्यक्तित्व से अभिभूत होकर उनसे विवाह करके रेखा भारद्वाज से रेखा शंकर हो जाती है।

वस्तुतः समस्या तो यहाँ भी बेमेल विवाह की ही है । "निर्मला उपन्यास की निर्मला या "गबन" उपन्यास की रतन की भाँति यहाँ कोई आर्थिक विवशता नहीं है । बल्कि रेखा में आत्म-निर्णय की चेतना है ।

रेखा भावातिरेक में डा. प्रभाशंकर से विवाह तो कर लेती है, परन्तु दोनों की आयु में लगभग बीस-पचीस साल का फासला है । शुरू-शुरू में तो रेखा को इस बात का अहसास नहीं होता है, पर विवाह के उपरान्त कुछ दिनों के पश्चात् वह अनुभव करने लगती है कि प्रोफेसर प्रभाशंकर शारीरिक दृष्टि से उसे परितृप्त करने में उतने सक्षम नहीं है । और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि रेखा के पास उद्दाम जवानी है, जबकि दूसरी ओर प्रोफेसर जी जवानी अब ढलान पर है । रेखा से विवाह के पूर्व वे जवानी के अनगिनत चैक काट चुके हैं और अब उनकी जवानी के खाते में ज्यादा बैलेन्स नहीं है । उनकी एक पूर्व-प्रेमिका देवकी प्रोफेसर के बारे में कहती है — "शिकार का तो शौक इन्हें है, लेकिन शेर-चीते आदि जंगली जानवरों के शिकार का शौक नहीं है । यह शहर के आसपास उड़ने वाली चिड़ियों का ही शिकार करते हैं और इसमें इनका निशाना अचूक होता है ।"[37] देवकी का शिकार प्रभाशंकर ने इलाहाबाद में किया था । उन दिनों वे प्रयाग विश्वविद्यालय में रीडर थे और अंतरर्राष्ट्रीय ख्याति मिलने की शुरूआत हो गई थी । देवकी का पति वहाँ पे किसी स्थानिक विद्यालय में हेडमास्टर पद का प्रत्याशी था और प्रभाशंकर वहाँ चयन-समिति में थे । देवकी का पति मरियल-सा था । देवकी की जवानी भी उछाल पर थी । प्रभाशंकर ने अपनी गोटी बिठा ली । देवकी एक प्रकार से उनकी "रखैल" बनकर रह गई । देवकी का नशा उन पर काफी वर्षों तक रहा । कदाचित् उसके सभी बच्चे भी प्रभाशंकर के थे । रमाशंकर तो हूबहू प्रभाशंकर जैसा लगता था । बाद में प्रभाशंकर दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर होकर चले आये । यहाँ उन्होंने रेखा को फांसा । रेखा बहुत ही सुन्दर और स्मार्ट थी । प्रभाशंकर केवल डी. लिट. में ही मार्गदर्शन

का दायित्व निभाते थे, पर रेखा के लिए वे एम.ए. के डिजर्टेशन के निबंध के लिए भी मार्गदर्शक होना स्वीकार करते हैं।

रेखा में पहले प्रोफेसर के लिए बद्धत्वग्रन्थि [Fixation] थी, किन्तु जैसे-जैसे उनकी हकीकत उसके सामने आती जाती है, उसमें मोहभंग की स्थिति का निर्माण होता है। उन्हीं दिनों में उसकी मुलाकात देवकी के बेटे रमाशंकर से होती है। वह बर्कली जा रहा था। देवकी उसको लेकर दिल्ली आती है। रेखा उसकी सारी शोपिंग करा देती है। गाड़ी में उसके निकट बैठते हुए रेखा एक विशिष्ट प्रकार के अज्ञात आकर्षण का अनुभव करती है। अनायास उसका हाथ उसके कंधे पर चला जाता है। कदाचित् पहली बार रेखा को यौवन की मादक सुगन्ध का अनुभव होता है। किन्तु चेतना [Conscious] और विवेक के कारण वह उससे आगे नहीं बढ़ती है। किन्तु उसकी पति-निष्ठा में एक छेद तो उस दिन अवश्य हो जाता है। उसे शायद ज्ञात होता है कि अपनी भावुकता में उसने क्या खोया है।

वह छेद निरंतर बढ़ता ही जाता है। उन्हीं दिनों में रेखा का परिचय सोमेश्वर दयाल से होता है। वह उसके भाई अरुण का मित्र था। रेखा उसकी ओर आकर्षित होती है। सोमेश्वर जब उसे अपने बाहुपाश में लेता है, तब ऊपर-ऊपर से तो वह मना करती रहती है, पर भीतर से वह उस पागल बहाव में खींची चली जाती है। सोमेश्वर से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने के उपरान्त उसके मन में "इद" और "इगो" का संघर्ष चलता है, उसका चित्र लेखक ने बखूबी खींचा है।

"चित्रलेखा" की भाँति प्रस्तुत उपन्यास में भी लेखक की पाप-पुण्य विषयक फिलोसोफी मिलती है। लेखक इसमें बताते हैं कि हम जिसे पाप समझते हैं, एक बार कर लेने के पश्चात् उसका भय कम हो जाता है और शनैः शनैः हम उसके आदी हो जाते हैं। सोमेश्वर के पश्चात् रेखा भी प्रोफेसर की तरह शिकार करना शुरू करती है

और एक के बाद एक पाँच पुरुष उसके जीवन में आते हैं । जब दूसरे पुरुषों से उसके यौन सम्बन्ध स्थापित होते हैं , तब उसे इस बात का भी गहरा अहसास होता है कि प्रोफेसर उसकी उद्दाम यौनेच्छा को कभी संतृप्त नहीं कर सकते , अतः उनके साथ वह "फुलफिलमेंट " का अनुभव कभी नहीं कर सकती ।

वस्तुतः रेखा अब एक "निम्फो" (विपुलकामासक्तावती) औरत हो जाती है । यदि शुरू से ही उसे कोई मनचाहा हमउम्र युवक जीवनसाथी के रूप में मिल जाता तो रेखा की यौनेच्छा साधारण (Normal) रहती , किन्तु पति के साथ यौन-तुष्टि न हो पाने के कारण उसकी यौन-बुभुक्षा भड़क उठती है । जिस प्रकार कोई भूखा आदमी खाने पर टूट पड़ता है , उसी प्रकार रेखा अब मानो पुरुष पर टूट पड़ती है और उसकी अहेरी आँखें हमेशा बलिष्ठ पुरुषों की खोज में ही रहती है । यौन-मनोविज्ञान कहता है कि प्रत्येक स्त्री में काम-वासना तो रहती है ही है , किन्तु किन्हीं कारणों से यदि कोई स्त्री अतृप्त रह जाती है तो उसकी काम-भावना अनेकगुना बढ़ जाती है । इस संदर्भ में डा. मनीषा ठक्कर कहती हैं —

"उम्र के फासले के कारण जहाँ एक ओर प्रोफेसर प्रभाशंकर में यौन-ग्रन्थि के कारण नपुंसकता पैदा होती है , वहाँ दूसरी ओर रेखा काम-अतृप्ति और कामाग्नि की अतिशयता के कारण क्रमशः एक "निम्फो" औरत हो जाती है । यदि रेखा का यौन-जीवन साधारण (नार्मल) ढंग से व्यतीत होता , उसका विवाह यदि किसी समवयस्क युवक से होता तो उसके जीवन में यौन-ग्रन्थि का निर्माण नहीं होता । परन्तु प्रौढ़ वय के प्रोफेसर से विवाह करने के कारण उसकी कामाग्नि शतशः बढ़ जाती है और फलतः एक "निम्फो" स्त्री की भाँति नये-नये शिकारों की खोज में रहती है ।" [38]

सोमेश्वर दयाल के उपरान्त रेखा के जीवन में पांच पुरूष आते हैं — शशिकान्त, निरंजनकपूर, शिवेन्द्र धीर, मेजर यशपंतसिंह और डा. योगेन्द्र मिश्र। शशिकान्त से उसकी भेंट एक सांस्कृतिक कार्यक्रम में हो गई थी। वह मिसेज चावला के साथ आया था और डा. प्रभाशंकर का भूतपूर्व छात्र था। हाल में एक तरफ मिसेज चावला और दूसरी तरफ रेखा बैठे थे। स्पर्श द्वारा वह रेखा के शरीर की भाषा को पढ़ लेता है और क्रमशः उनमें घनिष्ठता बढ़ती जाती है। वह भारतीय सचिवालय में किसी ऊंचे पद पर था।

निरंजनकपूर मिसेज चावला की पुत्री शीरीं का मंगेतर है, लेकिन वह अपनी भावी सास से रंगरेलियां मनाता है। शीरीं सुन्दर है। स्थानिक सौन्दर्य प्रतियोगिता में वह प्रथम आयी थी, किन्तु निरंजनकपूर के मतानुसार वह एक "ठण्डी" लड़की है। उससे ज्यादा गर्माहट तो उसकी मां में है। मतलब कि निरंजन कपूर भी शिकारी किस्म का पुरूष है। अतः रेखा की अहेरी आंखें उसे तुरन्त भांप लेती है। रेखा को शीरीं से सहानुभूति है, अतः वह उसकी मां से उसके पति को छीन लेती है। मसूरी में निरंजन कपूर के साथ रेखा खूब रंगरेलियां मनाती हैं, पर एक दिन गलती से निरंजन कपूर का सिगरेट केस डा. प्रभाशंकर के तकिये के नीचे रह जाता है। डा. प्रभाशंकर के मन में शंका पैदा होती है और एक दिन वे इन दोनों को रंगे हाथों पकड़ लेते हैं। डा. प्रभाशंकर खूब उत्तेजित हो जाते हैं और रेखा को मारते-पीटते हैं। उसे अपने घर से निकाल देने के लिए भी तैयार हो जाते हैं, पर रेखा डाक्टर के पांव पकड़ लेती है, खूब मिन्नत-समाजत करती है। फलतः उसके आंसुओं से वे पिघल जाते हैं और उसे पुनः रख लेते हैं, किन्तु उस दिन से संदेह की एक काली छाया उनके मन-मस्तिष्क का कब्जा ले लेती है और उनका चैनोसुकून सब खत्म हो जाता है। इस "शोक" के कारण वे मनोवैज्ञानिक नपुंसकता की ओर सरकते जाते हैं।

HANSA

निरंजन कपूर के साथ पकड़े जाने के बाद रेखा कुछ डर-सहम जाती है और कुछ दिनों के लिए अपनी शिकारी आदत छोड़ देती है। किन्तु सोमेश्वर , शशिकान्त और निरंजन के साथ यौनानंद लूटने के बाद प्रोफेसर अब उसे फीके-फीके से लगते हैं। अतः रेखा अधिक दिन तक संयम नहीं रख पाती। पुनः शिकार की खोज में लग जाती है। हालांकि अब वह अधिक सतर्कता बरतती है। रेखा का अगला शिकार है शिवेन्द्र धीर। शिवेन्द्र धीर में गज़ब का आकर्षण था। अतः लड़कियाँ उसकी ओर खींचकर चली आती हैं। उसका बाह्य-शरीर पुंसत्व से भरपूर था , पर शिवेन्द्र को नपुंसकता का अभिशाप मिला हुआ था। और उसकी यह नपुंसकता मनोवैज्ञानिक नहीं नैसर्गिक थी। अतः उसका कोई इलाज भी नहीं था। अतः धीर से रेखा को निराशा ही मिलती है।

मेजर यशवंतसिंह से रेखा की मुलाकात मुंबई में होती है , अतः स्थायी रूप से रेखा की यौन-क्षुधा वे संतृप्त नहीं कर सकते। डा. योगेन्द्र मिश्र को प्रोफेसर ही मुंबई से दिल्ली रीडर बनाकर लाते हैं , ताकि उनके बाद वह विभाग को आगे बढ़ायें। किन्तु रेखा उनको पहले ही अपने हृदय रूपी विभाग पर स्थापित कर देती है। इन छः पुरुषों में धीर तो नपुंसक था। सोमेश्वर का तो गर्भ भी रेखा को रहता है , लेकिन अपने भाई अरुण से उसे ज्ञात होता है कि दयाल अमरिका जाकर पागल हो गया था। अतः पागल के बच्चे गर्भ को धारण करना रेखा को ठीक नहीं लगता। अतएव उसका गर्भ वह गिरा देती है। डा. योगेन्द्र को छोड़कर शेष सभी से रेखा के सम्बन्ध शारीरिक प्रकार के ही थे। डा. मिश्र को वह हृदय से भी चाहने लगती है। रेखा और डा. मिश्र के सम्बन्धों को लेकर विश्वविद्यालय में भी कुछ चण-भण होने लगी थी। एक बार योगेन्द्र डा. अरोड़ा पर हाथ भी चला बैठते हैं। इन सबसे प्रोफेसर की प्रतिष्ठा को बहुत ठेस पहुंच रही थी , अतः बदनामी से बचने के लिए वे प्रोफेसर अपने सूत्रों का उपयोग करते हुए डा. योगेन्द्र को ओसलो युनिवर्सिटी में भेजने का प्रबंध करवा देते हैं।

इन सब बातों से प्रोफेसर का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जाता है । लो ब्लड-प्रेशर तथा हल्के हार्ट-एटेक से वे टूट-से जाते हैं । डा. मिश्र को लेकर भी रेखा का प्रोफेसर से झगड़ा होता है । पहले तो रेखा के आग्रह के कारण डा. मिश्र ओसलो जाने के लिए मना कर देते हैं, किन्तु बाद में प्रोफेसर के दबाव के कारण वह जाने के लिए राजी हो जाते हैं । इस बात को लेकर रेखा की प्रोफेसर से गरमागरम बहस हो जाती है, जिसके कारण प्रोफेसर के दायें पैर को लकवा मार जाता है । प्रोफेसर का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है । रेखा देवकी को भी बुला लेती है । वह डा. मिश्र के साथ अमरिका भाग जाने की योजना बनाती है, पर एकबार पुनः भावुकता की जीत होती है । प्रोफेसर को मरणासन्न अवस्था में छोड़कर वह जा नहीं सकती है और गाड़ी लेकर जब हवाई अड्डे पर पहुँचती है, तब तक डा. मिश्र का प्लेन जा चुका होता है । निराश होकर जब लौटती है तब देखती है कि प्रोफेसर के प्राण-पखेरू उड़ चुके हैं । ऐसी त्रासद स्थितियों में उपन्यास का अन्त होता है ।

: शिल्प और प्रयोग :

डा. त्रिभुवनसिंह ने " हिन्दी उपन्यास ~~[illegible]~~ " के अंतर्गत बताया है कि "रेखा" में वर्माजी रूढ़िगत परंपरा से हटकर एक ~~[illegible]~~ स्वेच्छाचारिणी (पुंश्चली) नारी का चित्रण किया है । यथा —" रेखा को उपन्यासकार की सहानुभूति मिली है और पाठक भी उससे घृणा नहीं करता, पर ऐसे चरित्रों से समाज का कौन-सा कल्याण होगा, विचारणीय है ।"[39] डा. सिंह के उपर्युक्त मत के संदर्भ में डा. पारूकान्त देसाई लिखते हैं —" परन्तु उपन्यासकार का उद्देश्य सच्चे और वास्तविक पात्रों का चित्रण है । उपन्यासकार हमें वह देता है जो हम हैं, वह नहीं देता जो हमें होना चाहिए । और प्रस्तुत उपन्यास से हमारे समाज की "रेखाएं" इतना तो सीख ही सकती हैं कि भावुकता की लौ में बहकर शरीर-धर्म की उपेक्षा कर बड़ी उम्र के व्यक्ति से विवाह करने का क्या परिणाम होता है ।"[40]

प्रस्तुत उपन्यास की रेखा को उसके पुंश्चलेपन के कारण रूढ़िगत

रूप से "वेश्या" कह सकते हैं, फिर भले ही यौन-कर्म के लिए वह पैसे नहीं लेती है। किन्तु ऐसी स्त्री को हमारा समाज वेश्या ही कहता है। इस तरह की दूसरी वेश्या है मिसेज रत्ना चावला। प्रोफेसर की तरह उसे भी शिकार की आदत है। वह भी एक "निम्फो" औरत है और एक-दो पुरुष से उसका गुजारा नहीं होता। अपने भावी दामाद तक को वह नहीं छोड़ती है। प्रोफेसर से भी उसके यौन-सम्बन्ध हैं। जो प्रोफेसर रेखा के सम्मुख स्वयं को कमजोर पाते हैं, वही प्रोफेसर मिसेज चावला जैसी निम्फो औरत को संतुष्ठ करते हैं। कारण मनोवैज्ञानिक हैं। देवकी प्रोफेसर की "रखैल" है और "रखैलों" को पूर्ववर्ती पृष्ठों में वेश्या की कोटि में रख चुके हैं।

§8§ नदी फिर बह चली :

"नदी फिर बह चली" हिमांशु श्रीवास्तव का एक यथार्थवादी-मार्क्सवादी परंपरा का उपन्यास है। "लोहे के पंख" के बाद का यह लेखक का दूसरा उपन्यास है जो सन् 1961 में प्रकाशित हुआ था। इसमें ग्रामीण तथा नगरीय दोनों प्रकार के परिवेश प्राप्त होते हैं। ग्रामीण परिवेश में बिहार के सारन जिले के हराजी, फेरूसा, चुरामनपुर आदि गांवों के परिवेश को लिया है, तो नगरीय परिवेश में पटना के निम्न-मध्यवर्गीय तथा निम्न वर्गीय परिवेश को लेखक ने हूबहू रूपायित किया है। उपन्यास की नायिका कहार जाति की परबतिया नामक एक सती-साध्वी स्त्री है। दुःखने उसके चरित्र को खूब तपाया है। मां का निधन बचपन में ही हो गया। उसके बाद सौतेली माँ का त्रास। उसका विवाह जगलाल नामक एक उसकी ही जाति के युवक से होता है जो पटना में ट्रक चलाता है। विवाह के बाद कुछ वर्ष परबतिया के सुख-चैन में बितते हैं, पर जगलाल ट्रक ड्राईवर है, अतः बुरी सोहबत के कारण शराबी, जुआरी और वेश्यागामी हो जाता है। ट्रक-ड्राईवरों को कई-कई दिन अपने घर-परिवार तथा पत्नी से दूर रहना पड़ता है;

ऐसी स्थिति में हाई वे के आसपास की झोंपड़पट्टियों में जो सस्ती वेश्याएं होती हैं उनके पास ये लोग अक्सर जाते हैं । जगलाल भी ट्रक के क्लीनर नत्थू के साथ सस्ती वेश्याओं की कोठरियों में जाता है । ऐसे स्थानों पर कई बार झगड़े होते हैं और चाकू-छुरियां चल जाती हैं । ऐसे ही एक हादसे में जगलाल पर अपने साथी के खून का इल्जाम लगता है और उसमें उसे जेल जाना पड़ता है । परबतिया पुनः बेसहारा हो जाती है । किन्तु वह एक स्वाभिमानी स्त्री है । ऐसी मजबूरी में वह अपने मैके नहीं जाती । ससुराल के गांव जाती है और पुश्तैनी एक-दो बीघा जमीन तथा मेहनत-मजदूरी करके अपने बच्चों को पालती-पोसती और पढ़ाती है । परबतिया एक जुझारू और जीवट वाली औरत है । उसे देखकर "गोदान" की धनिया की स्मृति जेहन में ताज़ा हो जाती ह है ।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है उपन्यास में वेश्याओं के परिवेश का यथार्थ चित्रण हुआ है । लेखक ने उनकी कोठरियां, खान-पान, रहन-सहन, बोलचाल आदि सभी का बड़ा ही सटीक वर्णन किया है । इस यथार्थ चित्रण के संदर्भ में डा. त्रिभुवनसिंह का कथन है — " (इन्हें पढ़कर) दोस्तोएवस्की की औपन्यासिक कृतियों का रसास्वादन होने लगता है ।" [41] यहां लेखक ने पटना की गन्दी बस्तियों में रहने-वाली तथा हाईवे के आसपास की झोंपड़पट्टियों की सस्ती वेश्याओं का जिक्र तो किया ही है, साथ ही पटना में रहने वाली अप्रकट वेश्याओं का चित्रण भी किया है । पटना में जिन स्त्रियों के बीच परबतिया रहती है — जनकिया की मां, चमेलवा आदि — वे बड़ी चालू औरतें हैं । वे अप्रकट रूप से वेश्यावृत्ति करती हैं । यहां लेखक ने पटना के निम्न वर्गीय लोगों के जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार का, उनके नैतिक अधःपतन का बड़ा ही स्पष्ट और बेबाक चित्र अंकित किया है ।

उपन्यास में अप्रकट वेश्या का एक रूप भी बताया गया है । कई बार बड़े शहरों के ठेकेदार उच्च अधिकारियों से अपना काम निकलवाने

के लिए उन्हें सुरा-सुन्दरी से नवाजते हैं । उपन्यास में ऐसे ही एक अधिकारी का वाकया चित्रित हुआ है । उसे युवा लड़कियों के स्थान पर हाई सोसायटी की गृहस्थिन टाईप की स्त्रियों का शौक था । उसके पीछे उसकी कोई मानसिक विकृति शायद काम कर रही हो । एक बार वह अधिकारी जब खाने -पीने के पश्चात् कहता है कि " हमारे लिए जो चीज़ मंगवायी है , उसे पेश किया जाए " , तो उसके कमरे में एक सुन्दर युवती को भेज दिया जाता है । अधिकारी के आश्चर्य और आघात का ठिकाना नहीं रहता , क्योंकि वह सुन्दर युवती उसकी पत्नी ही थी । होटल के अधिकारियों से सवाल -जवाब तलब करने पर ज्ञात हुआ कि वह युवती पिछले दो-तीन महीनों से इस पेशे में थी ।[42]

महानगरों में कई अच्छे-खासे खाते-पीते परिवारों की इज्जत-दार महिलाएं अपने निजी शौक को पूरा करने के लिए इस प्रकार का व्यवसाय करती हैं । सस्ती वेश्याओं की भांति केवल पैसे के लिए वे रात-दिन अपना शरीर नहीं बेचती , पर हफ्ते-पखवारे में एकाध बार ऐसी ट्रीप लगाती हैं । इससे उनको अच्छी-खासी रकम भी मिलती है और उनकी यौनेच्छा भी संतुष्ट होती है । नये-नये पुरुषों के साथ संभोग करने को मिलता है । " हिंग लगे न फिटकरी और रंग चोखो होय " वाली कहावत वे चरितार्थ करती हैं । महानगरों में (मेट्रोसिटीज़ में) व्यक्तियों की पहचान खो जाती है , अतः इस प्रकार का व्यवसाय खूब पनपा है ।

इस उपन्यास में यह तथ्य भी उजागर हुआ है कि जिस्मफरोशी का यह व्यवसाय पुलिस के सहयोग से ही होता है । उसमें दलालों और पुलिसकर्मियों की भागीदारी होती है । पुलिस को उसमें अपना हिस्सा तो मिलता ही है , नये-नये "माल" के साथ मौज करने का मौका भी भी मिलता है । प्रस्तुत उपन्यास का जगलाल कहता है — " दलाल जो कमाता है उसमें उन्हें (पुलिस को) भी हिस्सा मिलता है । आदमी पैसे खर्च करें तो पुलिस की नाक पर खून हो सकता है , पुलिस की नाक पर रण्डीखाना चल सकता है । ... इस पटने में कई ऐसे

होटल हैं, जहां लड़कियां मिलती हैं। दश बजे रात को वे होटलों में चली जाती हैं और सुबह चली आती हैं। क्या पुलिसवाले ये सब नहीं जानते? उसमें भी बड़े-बड़े घर की बेटियां, एम.ए., बी.ए. पास।"[43]

जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रस्तुत उपन्यास में गन्दी खोलियों में चलने वाली वेश्यागिरी का जीवन्त चित्रण मिलता है। "यहां "कमलवा" हो चाहे "सरदावा", हर माल दो रुपये चार आने मिलता है पुआल पर टाट और तकिये के बदले में हर बिछावन पर एक-एक ईंट। रात होती है तो माटी के बने ताखे पर माटी का दिया जल जाता है। सुबह से रात के दश बजे तक यह काम चलता रहता है।"[44] इतना ही नहीं, यहां गृहस्थिन औरतें भी फीस पर चलती हैं। दश बजे रात को दलाल ले जाता है और भोर होते ही पहुंचा जाता है।[45] यहां पर कुछ क्रियाओं के भी अलग अर्थ होते हैं, जैसे "बैठना" क्रिया। सामान्यतया उसका अर्थ होगा जमीन पर या कुर्सी पर या खाट पर बैठना - अंग्रेजी का "टु सीट"। किन्तु इन खोलियों में बैठने का मतलब है — "संभोग करना"। जैसे कोई वेश्या यदि कहती है कि "कितनी बार बैठोगे? एक बार या दो बार?" तो उसका अर्थ होगा कि तुम कितनी बार संभोग करना चाहते हो।

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में वेश्यावृत्ति और उसके परिवेश का बड़ा ही यथार्थ, वस्तुलक्षी एवं जीवन्त चित्रण मिलता है।

(9) इमरतिया :
==========

"इमरतिया" नागार्जुन का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1968 में हुआ था। शिल्प एवं वस्तु उभय दृष्टि से यह नागार्जुन का विशिष्ट उपन्यास है। मठों और मंदिरों में व्याप्त भ्रष्टाचार तो "मैला आंचल", "जल टूटता हुआ", "एक मुठ सरसों", "चाँदी मुट्ठी", "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई"

"प्रेम अपवित्र नदी" आदि [45] कई उपन्यासों में मिलता है; किन्तु केवल इसी वस्तु पर लिखा गया हिन्दी का कदाचित् यह पहला उपन्यास है। इमरतिया अर्थात् माई इमरतीदास, जमनिया महन्ती दरबार का बाबा, उनका मुख्य चेला साधु मस्तराम, जमींदार भगौतीप्रसाद ये चार इस उपन्यास के मुख्य पात्र हैं। यह एक पात्रात्मक उपन्यास है। पहले तीन पात्र अपनी-अपनी कथा कहते हैं, बीच में भगौतीप्रसाद का पात्र है, वह भी अपनी कथा कहता है, उसके बाद पुनः उपर्युक्त तीन पात्र अपनी-अपनी कथा कहते हैं। इसमें कथा के ताने-बाने बुने गए हैं। बिहार, उत्तरप्रदेश और नेपाल के सीमान्तवर्ती स्थान पर नारायणी नदी के किनारे जमनिया नामक एक गांव है। एक दिन वहाँ एक जटाधारी बाबा आता है। गांव के कुछेक कर्ता-धर्ताओं से मिलकर जमनिया मठ की स्थापना करते हैं और कुछ वर्षों में ही जमनिया महन्ती दरबार की प्रतिष्ठा पूरे ज्वार में फैल जाती है। मठ में होने वाले चमत्कारों की कहानियां गढ़ी जाती हैं और मठ की संपत्ति लाखों की हो जाती है। वहाँ आये दिन यज्ञ होते हैं, धार्मिक अनुष्ठान होते हैं, मेले लगते हैं, भण्डारे होते हैं और इन सबसे मठ की संपत्ति में दिन दुना रात चौगुना इज़ाफ़ा होता रहता है। नागार्जुन ने प्रस्तुत उपन्यास में यह बताया है कि इसमें धर्म के नाम पर कितने ढकोसले होते हैं, धर्म के नाम पर कितने अनैतिक कार्य होते हैं।

मठ में महिलाओं का एक आश्रम स्थापित हुआ है। वहाँ निःसंतान स्त्रियों का जमावड़ा होता है। प्रतिदिन सुबह-शाम उनको बाबा की चमत्कारी सोटी को छुआया जाता है। वस्तुतः जिन स्त्रियों को संतान नहीं होती है, उनमें कई ऐसी होती होंगी जिनको उनके पुरुषों की किसी कमी के कारण ~~गर्भ~~ गर्भ नहीं ठहरता ~~होगा~~ होगा। ऐसी स्त्रियों का सम्पर्क मठ के अधिकारियों, मठ के कर्ता-हर्ताओं, मठ में आने वाले विशिष्ट प्रकार के अधिकारियों, राजनेताओं आदि से करवाया जाता है, फलतः किसी-न-किसी का गर्भ ठहर जाता है। जिन स्त्रियों को गर्भ नहीं रहता उनमें किसी-न-किसी प्रकार की खोट

बतायी जाती है । जो स्त्रियाँ इस आश्रम में रहकर जाती हैं उनमें से कोई भी बाहर जाकर , अपने घर-परिवार में जाकर यहाँ की पोल-पट्टी बतायेगी नहीं , क्योंकि उसमें उनकी भी बेइज्जती हो सकती है । इस प्रकार इस आश्रम में एक प्रकार की धार्मिक-वेश्यावृत्ति ही चलती है ।

जैसा कि ऊपर बताया गया है मठ में बेंत की पिटाई से निःसंतान स्त्रियों को संतान-प्राप्ति करवायी जाती है । मस्तराम की ड्यूटी तो बेंत की पिटाई के बाद खत्म हो जाती थी । अगला मोर्चा भगौती , लालता , रामजनम , सुखदेव जैसे फतहबहादुर संभालते थे ।" ये ही लोग ठूंठ की कोख से पौदा पैदा करने की विद्या जानते थे । पत्थर पर दूब जमाने की हिकमत इन्हीं लोगों को मालूम थी ।" 46 इन्हीं कारणों से बाबा को पिछड़ी जातियों के अनपढ़ लोगों से विशेष प्रेम है , क्योंकि रंग और भेस के पीछे वे ज्ञान की परख भी नहीं करते और ऐसे मामलों में तर्क-वितर्क भी नहीं करते ।

परन्तु जिसे हम धार्मिक वेश्यावृत्ति कहते हैं उसका स्पष्ट रूप तो मठ में रहने वाली सधुआइनों के सन्दर्भ में मिलता है । मठ में लक्ष्मी , गौरी , माई इमरतीदास जैसी कई सधुआइनें रहती हैं । ये सधुआइनें बड़ी सुन्दर और अच्छे डीलडौल वाली होती हैं । इन सधुआइनों का उपयोग भी मठ के हितों की रक्षा के लिए किया जाता है । ये विशेष अतिथियों तथा अधिकारियों को "एण्टरटेइन" करती हैं । लक्ष्मी को महन्त का गर्भ रहता है । पहले तो बच्चे को गिराने का प्रयत्न किया जाता है , परन्तु जब उसमें सफल नहीं होते हैं , तब उस बच्चे की बलि दी जाती है । गौरी "निम्फो" प्रकार की सधुआइन है । कपड़ों की तरह वह मरदों को बदलती है । एक स्थान पर वह कहती है कि वह गरमाये घोड़े को भी शान्त करने की कूव्वत रखती है । 47 माई इमरतीदास अभी बची हुई है क्योंकि मस्तराम भीम बनकर भगौती जैसे दुष्ट कीचक से उसकी रक्षा कर रहा है । दूसरे माई इमरतीदास अभी वय में भी छोटी है । किसी

बड़े असामी के लिए उसे बचाकर रखा गया है । जब लक्ष्मी के बच्चे वाले मामले में मठ फंसता है और उसके खिलाफ़ कोई शिकायत होती है तब भरतपुरा के पुलिस ~~थाने में~~ थाने में गौरी को भेज दिया जाता है । गौरी तीन-चार रात वहां रहती है और सभी अधिकारियों को खुश-खुश कर देती हैं । लेखक ने इसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र खींचा है — " भरतपुरा की पुलिस के रिकार्ड में दर्ज हुआ होगा — पूजा की आठवीं रात में जाने किधर से एक पगली आई । उसकी गोद में छः महीने का बच्चा था । पुजारी की नज़र बचाकर उसने बच्चे को हवन-कुण्ड में डाल दिया । सरकार बहादुर से अर्ज है कि वह जमनिया मठ के सन्त शिरोमणि बाबाजी महाराज की प्रतिष्ठा और इज्जत को ध्यान में रखें ।" 48

तो फिर सवाल यह खड़ा होता है कि ऐसे मठों-मंदिरों और आश्रमों को इतने लोगों का प्रश्रय कैसे मिलता है ? जवाब बिलकुल सीधा है । ऐसे मंदिरों, मठों और आश्रमों के साथ ~~बड़ा~~ बड़े-बड़े लोगों के न्यस्त हित जुड़े हुए होते हैं । एक स्थान पर बाबा कहते हैं — " यह क्या मेरी जटाओं का ही जादू नहीं था कि भगौती ने अपनी चारों लड़कियों की शादी में लाखों रुपये खर्च किये ? लालता ने अपने बेटों को डाक्टर-इंजीनियर कैसे बनाया ? सेठ विर्धीचन्द की तोंद तिगुनी ~~किस~~ किस तरह हुई ? ठाकुर शिवपूजनसिंह ने ट्रेक्टर कैसे खरीदा ? रामजनम और सुखदेव की क्या हैसियत थी दश वर्ष पहले ? " 49

स्वामी अभयानंद नामक एक शिक्षित और समाजसेवी साधु एक बार आश्रम में आते हैं । वे महन्ती दरबार की जय नहीं बोलते हैं । इसी सबब मस्तराम उनकी बुरी तरह से पिटाई करता है । अभयानंद की पहुंच बहुत उपर तक थी जहाँ न जमनिया के जमींदार पहुंच सकते थे न गौरी सधुआइन । फ्लतः बाबा, मस्तराम और माई इमरतीदास को पकड़कर पुलिस ले जाती है । बाद में माई

इमरतीदास की जमानत तो हो जाती है , लेकिन बाबा और मस्तराम की जमानत के लिए भगौती आसमान-जमीन एक कर देता है , पर जमानत नहीं होती है । तभी आश्रम की इन सब पिशाच-लीलाओं का पर्दाफाश होता है । लक्ष्मी को पहले पगली करार दिया जाता है और बाद में शंकास्पद स्थितियों में उसकी मौत होती है । हो सकता है कि उसकी भी हत्या करवा दी गई हो ।

§10§ कांचघर :

रामकुमार ~~भ्रमर~~ भ्रमर द्वारा प्रणीत "कांचघर" उपन्यास अपने नवीन विषयवस्तु व परिवेश के कारण बहुत ही चर्चित रहा है । भवाई , नौटंकी , माच , तमाशा आदि नाट्यरूप लोकधर्मी परंपरा के अंतर्गत आते हैं जो क्रमशः गुजरात , उत्तरप्रदेश , मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र आदि में प्रचलित हैं । प्रस्तुत उपन्यास तमाशा मंडलियों — संच — में सांस लेने वाले मनुष्यों की क्रूर नियति पर आधारित है । महाराष्ट्र के जनजीवन में तमाशा बहुत ही लोकप्रिय नाट्य - नृत्य है । महाराष्ट्र के छोटे-छोटे गांवों से लेकर मुंबई , नागपुर और पूणे जैसे बड़े नगरों में भी उसे देखा व सराहा जाता है । किन्तु इन तमाशा वालों के जीवन पर बहुत ही कम लिखा गया है । "मराठी में संभवतः दो उपन्यास और एक-दो कहानियां ही लिखी गई हैं । हिन्दी में तो उस पर कुछ है ही नहीं ।" [50] हिन्दी में "कांचघर" के लेखक ने ही एक कहानी "संच" नाम से लिखी थी , जिसे पाठकों ने खूब सराहा था । लिहाजा लेखक ने तय किया था कि कभी इस विषय पर पूरा उपन्यास लिखा जाए । फलतः " कांचघर" के रूप में उसे अमली जामा पहनाया गया है । [51]

तमाशा-मंडली को संच कहते हैं । भवाई में तो प्रायः नारी पात्र का अभिनय भी पुरुष नट ही करते हैं , किन्तु नौटंकी और तमाशा आदि में तो स्त्री कलाकार भी होते हैं । नौटंकी-तमाशा

आदि में काम करने वाले लोग "खाने-कमाने" वाले लोग माने जाते हैं। अब प्रशासकीय प्रयत्नों से उन्हें "कलाकार" का दर्जा तो मिला है, लेकिन समाज में आज भी उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। एक बेकाबू भीड़ का मनोरंजन करना और कई बार कुछेक धनिकों की ~~रंगरलियों~~ रंगीनियों का साधन बनना उनकी क्रूर नियति के साथ जुड़ा हुआ है। इस बात को हम राजकपूर की "तीसरी कसम" फिल्म में भी देख सकते हैं। गाँव-खेड़े के छोटे-मोटे स्थानीय नेताओं (मुकुन्दराव और शंकरराव बेलापरकर) से लेकर पुलिस-कमिश्नर तक को उन्हें खुश करना पड़ता है, अन्यथा उन्हें "म्याद-खतमी" का नोटिस थमा दिया जाता है।[52] फलतः समाज की दृष्टि में तमाशा के मंच को रण्डीखाना व भडुआखाना ही माना जाता है।[53] मंच की कलाकार औरतों को भी लोग उसी दृष्टि से देखते हैं। कहा गया है —" तमाशेवाली औरत का क्या विश्वास। वह साली पंचायत का दफ्तर होती है। मोची से लेकर पंडित तक उसमें जा सकता है। वह सबकी और किसीकी नहीं।"[54] माला मंच की ही एक कलाकार है। वह कहती है —" मंच की औरत "नहाने का पानी" है और नहाने व पीने के पानी में हमेशा अन्तर किया जाता है।"[55]

"काँचघर" की कथा कावेरीबाई, माला और रत्ना के आसपास गूँथी गई है। अप्पाजी, चिमनभाई, बिरज, शंकरराव-बेलापरकर, मुकुन्दराव, मारोतीराव, बालाजीराव, जगन्नाथ आदि उसके दूसरे पात्र हैं। उपन्यास तमाशेवाली औरतों के समूचे वैयक्तिक व सामाजिक संघर्ष को अपने आप में बटोरते हुए उनके आँसू, उनकी पीड़ा और उनकी कुण्ठाओं को उजागर करता है। कावेरी-बाई का यह मंच ही "काँचघर" है। "काँचघर" में रहने वाले का अपना व्यक्तिगत कुछ भी नहीं होता — उसका अपना शरीर भी नहीं। कपड़ों में रहते हुए भी उन्हें नग्न रूप में देखने की लोगों को

आदत-सी पड़ जाती है ।

माला और रत्ना कावेरीबाई की लड़कियां हैं और अण्पाजी उनका फर्जी पिता । फर्जी इसलिए कि स्वयं कावेरीबाई को पता नहीं है कि उनके पिता कौन-कौन थे । कावेरीबाई एक बिजली , एक तेजी और एक तर्रावट है । माला कावेरीबाई की बड़ी लड़की है और संच की जिन्दगी को वेश्यावृत्ति मानती है तथा उससे नफ़रत करती है । उसे जगन्नाथ नामक एक कामगार लड़के से प्रेम हो जाता है । माला और जगन्नाथ संडास में चोरी-चोरी मिलते हैं । रत्ना उनको देखती रहती है । एक बार माला जगन्नाथ के साथ भागने की योजना बनाती है पर पकड़ी जाती है । कावेरीबाई जगन्नाथ पर चोरी का इल्जाम लगवाकर उसे एक साल के लिए अन्दर करवा देती है । माला चुप्पी साध लेती है । अतः रत्ना उससे नफ़रत करने लगती है । माला स्थितियों के साथ समझौता कर लेती है और अपने मन को मना लेती है कि "संच की औरत को तमाशे में ही थाप ढूंढना चाहिए । "56 वह समझ जाती है कि गृहस्थी उसके लिए नहीं बनी है और वह सब करती है जो कावेरीबाई चाहती है । वह संच के लिए कमिश्नर के साथ भी सोती है । संच जहां-जहां जाता है , वहां के सत्ताधारी और शक्तिसंपन्न लोगों के साथ संच की बाइयों को सोना पड़ता है ।

जगन्नाथ जब जेल से छूटकर आ जाता है तो माला कावेरी-बाई के लाख विरोध के ~~उसके साथ~~ बावजूद उसके साथ रहने लगती है । अब वह प्रगट हो गई है । माला ने अब संच में कावेरीबाई का स्थान पा लिया था , अतः उसकी जरूरत को समझते हुए , कावेरीबाई भी समझौता कर लेती है । जगन्नाथ भी अण्पाजी की तरह संच में ही रहने लगता है , पर माला कावेरीबाई तथा अण्पाजी की परम्परा को आगे बढ़ाना नहीं चाहती थी , वह नहीं चाहती थी कि आगे चलकर उसकी बेटी को भी किसी के साथ सोना पड़े , लिहाजा वह शहर जाकर आपरेशन करा लेती है ।

कावेरीबाई की दूसरी बेटी है रत्ना । वह भी संच की जिन्दगी को नफ़रत की दृष्टि से देखती है । माला की तरह वह भी एक "घरू औरत " बनना चाहती है । कावेरीबाई संच के नृत्य को आर्ट कहती है, लेकिन वह मानती है —" आर्ट सीधा होना चाहिए । नाच-गाकर लोगों को ख़ुश करना व्यवसाय हो सकता है, पर गन्दे इशारों से धन लूटना आर्ट नहीं है । वह वेश्यावृत्ति है ।" [57] अतः वह भी किसी जगन्नाथ को तलाशती रहती है और मुकुन्दराव के रूप में उसे अपना जगन्नाथ मिल जाता है ।

मुकुन्दराव पटेल है । महाराष्ट्र में जमींदारों को पटेल कहा जाता है । आसपास के गाँवों में उसकी ख़ूब प्रतिष्ठा है । वह सरपंच का चुनाव लड़ने वाला है । वह रत्ना पर मर मिटता है । रत्ना भी उस " फेंटेवाला, चश्मेवाला, बरापाहुणा (प्यारा मेहमान) " को बहुत चाहती है । कावेरीबाई रत्ना को आदेश देती है कि वह उसे अपने चंगुल में फंसावे, लेकिन रत्ना तो उसे जिन्दगीभर के लिए फंसा देती है । रत्ना मुकुन्दराव से विवाह करना चाहती है । मुकुन्दराव भी यही चाहता है, लेकिन कावेरीबाई को यह मंजूर नहीं था, क्योंकि कावेरीबाई का बरसों का अनुभव कहता था कि संच की औरत "घरू औरत" नहीं हो सकती है । समाज उसको इज्जत की नज़र से नहीं देखता है । समाज छोड़ वह व्यक्ति, जिससे वह शादी करती है वह भी कभी उसे इज्जत की नजरों से नहीं देखता । भावुकता की रौ में वह विवाह तो कर लेता है पर बाद में उस पर कभी विश्वास नहीं करता और यह विश्वास ही गृहस्थी की — दाम्पत्य की सांस होता है । लेकिन माला और जगन्नाथ के प्रयत्नों से उन दोनों का विवाह होता है और इस प्रकार रत्ना का एक "घरू औरत " होने का सपना पूरा होता है । किन्तु उपन्यास की त्रासदी उसके बाद ही शुरू होती है । मुकुन्दराव रत्ना को हमेशा आशंका की दृष्टि से देखता है । बात-बात में वह रत्ना को रण्डी और तमाशेवाली

कहकर गालियां देता है और उस पर फब्तियां कसता रहता है ।

कुछ ही दिनों में रत्ना के सामने "घरू" औरतों की घिनौनी हकीकत सामने आ जाती है । मुकुन्दराव अपनी भाभी सखूबाई से भी फंसा हुआ है । सखूबाई का एक होंठ फटा हुआ था , अतः मारोती-राव (मुकुन्दराव के बड़े भाई) कभी उसे मन से नहीं चाह सके । फलतः सखूबाई को वे शारीरिक दृष्टि से कभी संतुष्ट नहीं कर सके । दूसरी ओर उसका कसा हुआ शरीर और पुष्ट जांघें मुकुन्दराव को आकर्षित करती थीं । परिणामतः वह जब-तब अपना तनाव सखूबाई द्वारा दूर कर लिया करता था और सखूबाई की भी सारी जिस्मानी आग मुकुन्दराव के प्यार के फव्वारे को पाकर बुझ जाती थी । रत्ना को बहु जब इन घिनौने सम्बन्धों का पता चलता है तो वह बाहर-भीतर से पूरी तरह से सुलग जाती है । वह मुकुन्दराव को कहती है —

" तुम्हारी घरू औरतों से तमाशे की औरतें कहीं अधिक भली हैं । ... कई गुना शरीफ । ... उनकी जिन्दगी एक साफ-सुथरे ढंग से बीतती है । सबकुछ कांच के गिलास-सा । जिस रंग का पानी होगा , वह उजागर , और तुम्हारे घर , तुम्हारे आबरूवाले घर , गन्दे पानी की मोरी जैसे , जिसके ऊपर सफेद चमकता हुआ पत्थर रखा रहता है और भीतर सडांध ।" 58

और तब संघ की कावेरीबाई और माला हमें इज्जतदार समाज की सखूबाई से कई गुना ज्यादा अच्छी और ऊंची लगने लगती हैं । कमजकम वहां कोई बनावट नहीं है , धोखा नहीं है । कांचघर की तरह बिलकुल साफ । ये इज्जतदार लोग , मुकुन्दराव अपने पिता समान बड़े भाई की पत्नी से ही अपनी खुजली मिटा रहे हैं । तमाशे-वाली औरतों के सामने तो मजबूरी होती है , लाचारी और विवशता होती है । न चाहते हुए भी उन्हें कई बार दूसरों की अंकशायिनी होना पड़ता है । यहां क्या है ? फकत और फकत अपनी हवस-पूर्ति

के लिए सखूबाई जैसी कुतियाएं मुकुन्दराव जैसे कुत्ते को गांठ लेती हैं ।

मुकुन्दराव के कटु व सूखे व्यवहार के बावजूद "घरू औरत " के सम्बन्ध में रत्ना की आस्था हिली नहीं थी , किन्तु मुकुन्दराव और सखूबाई के अनैतिक घृणित व्यवहार को जब रत्ना अपनी आंखों से देखती है , तब उसकी सारी आस्था चरमराकर टूट जाती है । वह फेंटेवाला- चश्मेवाला- बरापाडुआ " अब उसे भौं-भौं करने वाला अल्शेसियन कुत्ता लगने लगता है ।

फलतः रत्ना बालाजीराव को गांठती है । बालाजीराव पर रत्ना का संमोहन चल जाता है । वह उसके साथ भागने की योजना बनाती है । वह किसी तरह कावेरीबाई के संघ में पुनः पहुंच जाना चाहती है । वह सोचती है कि एक बार वह कावेरीबाई के पास पहुंच जायेगी तो कावेरीबाई अपने रसूख से उसे मुकुन्दराव के आतंक से बचा लेगी । लेकिन दुर्भाग्य से रत्ना पकड़ी जाती है । बालाजीराव भागकर कावेरीबाई के संघ में पहुंच जाता है । मुकुन्दराव व सखूबाई का व्यवहार अब और भी कटु हो जाता है । केवल मारोतीराव को रत्ना से सहानुभूति होती है । अतः उनके समझाने पर थोड़े समय के लिए मुकुन्दराव कुत्ते का मुखौटा छोड़कर गाय का मुखौटा पहन लेता है । उसमें उसका अपना भी स्वार्थ होता है । रत्ना के भागने से उसके चुनाव पर भी बुरा असर पड़ सकता है ।

उपन्यास के अन्त में हम पाते हैं कि बालाजीराव , माला , जगन्नाथ , कावेरीबाई , अण्णाजी आदि शंकरराव बेलापुरकर से मिलकर रत्ना को उस कैद से मुक्त कराने के लिए कटिबद्ध होते हैं । महीने की सत्ताइस तारीख मुकर्रर होती है । मुकुन्दराव चुनाव जीत गया है । सब लोग उसके जश्न में व्यस्त हैं और अब मुकुन्दराव भी थोड़ा निश्चिंत हो गया है , क्योंकि रत्ना के भागने से उसके चुनाव पर कोई असर पड़ने वाला नहीं है । किन्तु एक बार फिर रत्ना का दुर्भाग्य उसकी मुक्ति के मार्ग में आ जाता है । उसी दिन उसे

डाक्टर से ज्ञात होता है कि वह मुकुन्दराव के बच्चे की मां बनने वाली है और इस बात से रत्ना अपने इरादे में कमजोर पड़ जाती है । रत्ना, कावेरीबाई के संच की हंसिनी रत्ना, घरू औरत होकर मोहभंग हुई रत्ना, मुकुन्दराव को आपादमस्तक घृणा करने वाली रत्ना, उसके भीतर छिपकर बैठी हुई "मां" से मात खा जाती है । प्रसादजी की लज्जा सर्ग (कामायनी) की अंतिम पंक्तियां बरबस स्मृति में कौंध जाती हैं —

" आंसू से भीगे अंचल पर
मन का सबकुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह संधि-पत्र लिखना होगा ।" 59

और न चाहते हुए रत्ना को उस "संधि-पत्र" पर अपनी इच्छा की मुहर लगानी पड़ती है । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में डा. रामकुमार भ्रमर ने "अप्रस्ट समूह" की वेश्याओं का चित्रण तमाशेवाली बाईx बाइयों की क्रूर नियति के रूप में किया है ।

(ii) आगामी अतीत :

" आगामी अतीत" कमलेश्वर का उपन्यास है । उसका प्रकाशन सन् 1976 में हुआ था । जैनेन्द्र कृत "त्यागपत्र" के जस्टिस पी. दयाल और प्रस्तुत उपन्यास के डा. कमल बोस एक ही व्यवस्था के शिकार हैं । समाज द्वारा स्थापित पद और प्रतिष्ठा को वरीयता प्रदान करने के कारण दोनों को अपने वर्ग और अपने लोगों से कटना पड़ता है । कुछ हद तक फिल्म "त्रिशूल" की भी यही व्यथा-कथा है । जस्टिस पी. दयाल और डा. कमल बोस सामाजिक दृष्टि से तो काफी ऊपर उठ जाते हैं, पर अपने ही निगहबानों में गिर जाते हैं । जस्टिस पी. दयाल साफ-साफ स्वीकार करते हैं —" कामयाब वकालत और इस जजी के इतने मोटे शरीर में क्या राई जितनी भी आत्मा है ? मुझे

इसमें बहुत संदेह है । मुझे मालूम होता है कि मैं अपने को खो सका हूं तभी सफल वकील और बड़ा जज बन सका हूं ।" 60 इस संदर्भ में डा. पारूकान्त देसाई लिखते हैं -- " ॥ये॥ दोनों अपने वर्ग या अपनों से कटकर सामाजिक दृष्टि की सफलता तो प्राप्त कर लेते हैं , परन्तु मृणाल और चन्दा के भविष्य की आहुति देकर ही यह संभव हो पाता है और सफलता का नशा जब चुक जाता है , तब सिवाय पश्चाताप और घोर आत्म-ग्लानि के कुछ हाथ नहीं आता । लेखक के ही शब्दों में अतीत का काटा पानी नहीं माँगता । अतः मृणाल की दयनीय -- नारकीय अवस्था और मृत्यु के पश्चात् जहां जस्टिस पी. दयाल जजी से इस्तीफ़ा दे देते हैं वहां कमल बोस भी पागलपन की अवस्था में चन्दा की मृत्यु के समाचार पाकर तथा उसकी बेटी चांदनी को कार्सियांग के वेश्यालय में देखकर बेतहाशा टूट जाते हैं । उस नार-कीय जीवन से यदि चांदनी लौट पाती तो कमल बोस को कुछ सांत्वना मिलती पर उनकी भरसक कोशिशों के बावजूद चांदनी उनके साथ नहीं आ पाती ।" 61

चांदनी कहती है -- " अब ... इसमें क्या रखा है ? " 62 लेखक की टिप्पणी है -- " अगर आदमी को अपना अतीत ठीक कर लेने का जरिया मिल जाए , तो बात बहुत आसान हो जाती है ।" 63 पर जिन्दगी इतनी आसान कहां ? वह तो पेचीदा है । एक अंग्रेजी उक्ति में बिलकुल सही कहा गया है -- " डेइज़ विल कम , बट द डेइज़ विल नोट । " दिन तो आयेंगे और जायेंगे , पर वे जो "पर्टिक्युलर " दिन होते हैं , वे कब आने वाले हैं ? जस्टिस पी. दयाल और डा. कमल बोस दोनों अपने अतीत को सुधारने में असमर्थ हैं और यही उनकी ट्रेजडी है ।

उपन्यास की कथा कुछ इस प्रकार है : कमल एक गरीब मां का बेटा है । पढ़ने में जहीन है , फलतः मां " मारवाड़ी चैरिटेबुल ट्रस्ट " से उसे वजीफा दिलवाकर डाक्टरी का पढ़ाती है । कमल एम.बी.बी.एस. की सघन पढ़ाई के लिए अपने वतन दार्जिलिंग

आता है । वहां उसकी मुलाकात चन्दा से होती है । वह "धन्वंतरी औषधालय " के वैद्य दिलबहादुर थापा की पुत्री है । यह मुलाकात गहरी मुहब्बत में बदल जाती है । लेकिन कमल एम.बी.बी.एस का इम्तिहान देने जो कलकत्ता जाता है, तो फिर कभी नहीं लौटता । और जब लौटता है तो बहुत कुछ बदल चुका होता है । डाक्टरी में फर्स्ट आने के सबब मोहन सेन अपनी पुत्री के लिए कमल को खरीद लेते हैं । कमल "मानसी केमिकल्स " का मैनेजर हो जाता है । उसके एवज में उसे मोहन सेन की लाड़ली छूछी पुत्री निरूपमा से शादी करनी पड़ती है । सनकी होने के कारण कमल की निरूपमा से कभी नहीं पटती है । एक दिन ममेरे भाई रमेन्द्र सेन के सख्त रवैये के कारण निरूपमा मात्रा से अधिक नींद की गोलियां खाकर आत्म-हत्या कर लेती है ।

दूसरी तरफ चन्दा दो-तीन साल तक तो जिद करती रही लेकिन आखिरकार पिता की बीमारी और बदनामी से लाचार हो उसे एक अधेड़ लंगड़े हरकारे से विवाह करना पड़ता है । वैद्यजी की मृत्यु हो जाती है, इधर चन्दा के पति को जंगली जानवर दबोच लेता है । इसी हरकारे से चन्दा को एक पुत्री होती है । उसीका नाम चांदनी है । चन्दा नीली घाटी के एक क़रधाघर में कुछ काम करती रही । उसके बाद धौलपुर में अपने पैतृक व्यवसाय को संभालते हुए एक दवाखाना खोल दिया । धौलपुर का दवाखाना जब चल निकला तो वह सिलीगुड़ी चली गई । वहां पच्चीस साल के बाद पागलपन की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई — ठीक डा कमल के वहां पहुंचने के एक साल पूर्व ।

चन्दा अपनी बेटी चांदनी को डाक्टर बनाना चाहती थी लेकिन उसके पहले एक हादसा होता है जो उसके जीवन की धुरी को ही बदल देता है । पागलखाने में एक खूनी, पर जो पागल होने का ढोंग रचाए हुए था, चांदनी पर बलात्कार करता है । वही खूनी पागल चांदनी को कार्सियांग के वेश्यालय में बेच देता है और इस

प्रकार चांदनी के जीवन की दशा और दिशा दोनों बदल जाते हैं, पर अपनी माँ के मन में चांदनी आखिर तक वही भ्रम बनाए रखती है कि वह कलकत्ता में डाक्टरी का पढ़ रही है।

डा. कमल बोस से चांदनी की मुलाकात भी आकस्मिक ढंग से होती है। डाक्टर उसे सही रास्ते पर लाने के बहुतेरे प्रयत्न करते हैं, किन्तु चांदनी उस जीवन में इतनी आगे बढ़ गयी है कि अब सभ्य समाज में जाने की उसकी रुचि ही खत्म हो गई थी। आखिर में चांदनी पर डा. कमल का राज़ भी प्रकट हो जाता है। फिर भी वह उसके साथ नहीं जाती। प्रस्तुत उपन्यास में वेश्यालय के परिवेश तथा उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा का भी लेखक ने सटीक प्रयोग किया है।

§12§ मछली मरी हुई :

"मछली मरी हुई" राजकमल चौधरी का एक बहुत ही चर्चित उपन्यास है। उसका प्रकाशन सन् 1966 में हुआ था। "सम-लैंगिक स्त्री यौनाचार § लिस्बियानिज़म § पर लिखा गया सम्भवतः हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इस प्रकार यदि विचार किया जाए तो यह उपन्यास मुख्यतया "लिस्बियानिज़म" पर है। उपन्यास में शीरीं, प्रिया आदि नारी पात्र हैं। शीरीं एक लिस्बियन औरत है और अपने फायदे के लिए वह प्रिया को भी लिस्बियन बना देती है। किन्तु उपन्यास में वेश्यावृत्ति का चित्रण कल्याणी के कारण हुआ है।

कल्याणी डाक्टरी का पढ़ने अमरिका गई थी, किन्तु फारेन एक्सचेंज की दिक्कत के कारण घर से पैसे आने बन्द हो जाते हैं और वहीं से उसके जीवन की भटकन शुरू होती है। वह न्यूयोर्क, केलिफोर्निया और लास एन्जिल्स के पबों और नाचघरों में चक्कर काटने लगती है। उसीमें उसे शराब की लत लग जाती है। ड्रम और आर्कडियन की वहशी धुनों पर वह जिल्वाना मैनगानो और सोफिया लारेन की तरह थिरकने लगती है। माडलिंग, कालगर्ल

और ब्लू फिल्मों में काम यह सब उसका पेशा हो जाते हैं । पोर्ट, शेरी, वारमुथ, शेरोय रम जैसी शराबें तथा चरस, मारेजुएना, हेरोइन, स्मैक आदि ड्रग्स की उसे लत पड़ जाती है ।

भारतीय दूतावास के एक जलसे में उपन्यास के नायक निर्मल पद्मावत से उसकी मुलाकात होती है । कल्याणी का व्यक्तित्व इतना आकर्षक था, इतना संमोहक था कि एक बार जो उसे मिलता था, उसे कभी नहीं भुला पाता था । दूसरी बार "ब्रोड वे " के एक थियेटर में निर्मल को कल्याणी अचानक मिल जाती है । वह एक सरदारजी को झांसा देना चाहती है और निर्मल उसमें उसकी सहायता करता है । फलतः उनका परिचय क्रमशः मित्रता में बदल जाता है । उन दिनों कल्याणी प्रतापसिंह नामक एक पुराने जमींदार के नये वारिस को फंसाना चाहती थी, किन्तु लड़के के चाचाजी की चालाकी की वजह से वह उसमें नाकाम रहती है । तब एक दिन वह अचानक निर्मल से पैसों की मांग करती है । उसके आकर्षण से वशीभूत निर्मल अपनी सारी जमा पूंजी ‡ बारह सौ पचास डालर ‡ कल्याणी को दे देता है । तब कृतज्ञतावश कल्याणी उसे अपना शरीर देना चाहती है । वह कहती है —" निर्मल तुम मेरे अपने देश के आदमी हो । अपनी जबान में बोलोगे । यहां मेरा अमरिकनों से ही नहीं, चाइनीज़ और अफ्रिकनों से भी वास्ता पड़ता है । सभी मुझे "व्हाइट इण्डियन लेडी " कहते हैं और मेरा उजलापन चूस डालना चाहते हैं । तुम मेरे अपने देश के हो, चूसोगे नहीं, कोमल हाथों से मेरे जख्म सहलाओगे, मेरे दर्दों पर मरहम xxxxxxx लगाओगे ।" 64

निर्मल पहले तो हिचकता है, लेकिन बाद में वासना के प्रवाह में बहने लगता है । पर तभी अचानक क्या होता है कि वह काले पत्थरों के पहाड़-सा आदमी बर्फ-सा ठण्डा पड़ जाता है । लेखक ने इसका बड़ा ही सांकेतिक वर्णन किया है —" दो-तीन मिनट बाद कल्याणी ने पट्टियां छोड़ दीं और अचानक उसकी निगाहें घुटनों के

चल उठते हुए निर्मल की ओर गई । निर्मल बर्फ के टुकड़े की तरह ठण्डा हो चुका था । मर चुका था । आँखों के अंगारे बुझ चुके थे । ... तुम यही आदमी हो ? ... इतने आदमी हो ? ... बस इसी के लिए ... इतने ही के लिए मेरे पास आये थे ? ... छिः छिः ... कल्याणी चीखने लगी ... फिर कभी इधर नहीं आना निर्मल । तुम आदमी नहीं हो , नरक के कीड़े हो ... मत आना कभी ।" 65

निर्मल पद्मावत के इस शीघ्र-स्खलन के संदर्भ में डा. पारूकान्त देसाई लिखते हैं --" यौन-मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रथम सम्भोग में पुरुष का अधिक उत्तेजित होकर शीघ्र स्खलित होना कोई दोष या नपुंसकत्व नहीं है । दूसरे निर्मल की इस स्थिति के लिए अचानक स्केलेटन को देखने से उत्पन्न उसकी मनः स्थिति भी है । अतः कल्याणी ने यदि सहानुभूति से काम लिया होता तो निर्मल फिर से तैयार हो सकता था ।" 66

कल्याणी एक कालगर्ल है । उसके सम्पर्क में प्रायः अनुभवी लोग ही आते हैं । दूसरे अपने व्यावसायिक एटिट्यूड के कारण वह बहुत ही "रफ एण्ड टफ "हो गई है । फलतः उसकी भर्त्सना और फटकार का बहुत ही बुरा असर निर्मल पर पड़ता है और अंततोगत्वा वह नपुंसक हो जाता है । उसकी यह नपुंसकता कल्याणी ही दूर कर सकती थी । पर वह तो डा. रघुवंश से विवाह करके , प्रिया जैसी प्यारी बच्ची को देकर पार्क स्ट्रीट की "सिमेट्री" में शांति की नींद सो जाती है ।

उपन्यास में वर्णित कल्याणी तो कालगर्ल है , मोडेल है । मतलब की हाई-फाई सोसायटी की वेश्या है । किन्तु इसी उपन्यास की शीरीं मेहता हाई-फाई सोसायटी की ही "अप्रकट समूह " की वेश्या है । वह एक लिस्बियन औरत है । यदि किसी ढंग के नार्मल पुरुष से उसका विवाह होता तो उसकी यह बीमारी दूर भी हो सकती थी , किन्तु विवाह होता है उसका बूढ़े विश्वजीत मेहता से ।

उसके बिस्तर में उसे गर्माहट और आनंद का अनुभव नहीं होता , क्योंकि बिस्तर बेहद छम्म ठण्डा होता है। अतः शीरीं मोडर्न सोसायटी की क्लबों और पार्टियों में नये-नये शिकारों को टोहती रहती है। उसके शिकार दोनों होते हैं — स्त्री और पुरुष । स्त्री हो तो उसके साथ समलैंगिक संबंध स्थापित करती है और पुरुष हो तो लैंगिक । इसी उपक्रम में वह "पुरुष वेश्याओं " (मेल प्रोस्टिट्यूट) की खोज में भी रहती है ।

प्रिया भी शीरीं का शिकार थी । एक पार्टी में प्रिया जब निर्मल के नपुंसकत्व की ओर इशारा करती है , तब वह बौखला उठता है और प्रिया पर मानो टूट पड़ता है । एक बार नहीं , वह अनेक बार प्रिया पर सफल बलात्कार करता है । उसका पुंसत्व लौट आता है । निर्मल को व्यापार में घाटा जाता है पर "कल्याणी मेन्शन " किसी प्रकार बचा लेता है और उसे प्रिया को दे देता है । और वह नीली मछली — शीरीं — पद्मावत को पाकर मानो फिर से जी उठती है ।

(13) बोरीवली से बोरीबन्दर तक :

"बोरीवली से बोरीबन्दर तक " मुंबई की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है । शैलेश मटियानी कुमाऊं से भागकर मुंबई गए थे । वस्तुतः यह उपन्यास उस समय के उनके संघर्ष को स्थापित करता है । उपन्यास-नायक वीरेन , वस्तुतः शैलेश ही है । उपन्यास की कथा संक्षेप में इस प्रकार है : वीरेन कुमाऊं के सुपै गाँव से भागकर बम्बई आता है । बम्बई में टिकट चेकर द्वारा उसका पकड़ा जाना, चेकर का मानवतापूर्ण व्यवहार , उसका मुंबई के किसी स्टेशन पर पड़े रहना , वहाँ डुंगरापाड़ा के युसुफदादा से परिचय , दादा किसी "भैया" का सौदा ले रहे थे (बम्बई की तब की भाषा में सौदा लेना जेब काटने को कहते थे) , वीरेन दादा को देख लेता है , दादा उसे चुप करा देते हैं , दादा को वीरेन पर तरस आता है , उसे

अपनी प्रेमिका नूर के हाथों की चाय पिलाने के लिए ले आना , वीरेन की करुण-कहानी सुनकर उसे अपने यहां आश्रय देना , नूर की दर्दनाक कहानी , मुंगरापाड़ा और वहां के परिवेश का जीवन्त चित्रण , दादा का पुलिस द्वारा पकड़ा जाना , उन दिनों में नूर का वीरेन के करीब आना , वस्तुतः वीरेन पर नूर की ~~यह×हकीकत~~ इस हकीकत का उजागर होना कि वह मूलतः नैनिताल की है , एक आदमी उसे झांसा देकर मुंबई लाया था , उसकी प्रेम-वंचना का शिकार होकर वह मुंगरापाड़ा में आती है और उसे वेश्या होने पर मजबूर किया जाता है , इसी उपक्रम में युसुफदादा से उसकी मुलाकात होती है , दादा का दिल उस पर आ जाता है और वे उसे अपने यहां उठा लाते हैं , दादा जब जेल चले जाते हैं तब वीरेन-नूर अधिक निकट आते हैं , नूर मूलतः हिन्दू है और उसका मां-बाप का दिया हुआ नाम रेवा था , दादा की अनुपस्थिति में विट्ठल और स्वामी नूर को पुनः भ्रष्ट करने की कोशिश करते हैं , वीरेन द्वारा उसकी रक्षा होती है । , दादा के लौट आने पर दादा द्वारा वीरेन-रेवा को प्रेम करते हुए देख लेना , दादा का वीरेन की छाती पर चढ़ बैठना पर फिर अचानक उठकर कहीं चले जाना , वीरेन-रेवा का टिकट-चेकर के यहां आश्रय लेना , दादा का वहां पहुंचना और फिर नूर से मुआफी मांगना जैसी घटनाओं द्वारा यहां मुंबई की अंधेरी आलम का जीवन्त चित्रण हुआ है ।

इसमें मुंबई के मुंगरापाड़ा जैसे विस्तार की गन्दी-घिनौनी बस्तियों का तादृश चित्रण मटियानीजी ने किया है । इसमें युसुफदादा जैसे दादा हैं , गुण्डे-बदमाश हैं , पाकेटमार और जेबकतरे हैं , दारू-वाले -मटकावाले हैं , दो-दो चार रुपयों में शरीर का सौदा करने वाली वेश्याएं हैं । मटियानीजी भी ऐसी गन्दी-घिनौनी बस्ती में रहनेवाले लोगों की मानवता का चित्रण करते हैं । एमिल जोला की भांति मटियानीजी भी बताते हैं कि ऐसी गन्दी-घिनौनी झोंपड़पट्टि-यों और फुटपाथों पर रहने वाले लोगों में भी कई बार वक्त आने पर

इन्सानियत के दीये झिलमिलाते हुए नज़र आते हैं जो उन्हें ~~ता लिहाज़~~-भर अंधा ही साबित करते हैं ।

दादा नूर को वेश्या के कोठे से उठाकर लाते हैं, पर फिर भी उसकी बहुत इज्जत करते हैं । कई बार कुछ लोग भावुकता में ऐसा काम भी कर जाते हैं, पर वक्त-बेवक्त उसे सुनाने से बाज नहीं आते कि वह कभी वेश्या रह चुकी है । जब कि दादा एक हरफ भी मुंह से नहीं निकालते । जब वीरेन और रेवा को { नूर को } प्यार करते हुए देख लेते है, तब उनका खून खौल उठता है और वे वीरेन की छाती पर चढ़ बैठते हैं । पर फिर कुछ याद आने पर उसे छोड़ देते हैं और कुछ समय बाद वापस आकर रेवा से माफी मांगते हैं । वस्तुतः जब वे मे नूर को अपने यहाँ लाये थे तभी कहा था —

"दरअसल मैं बहुत बुरा आदमी हूं । तुमसे उम्र में भी ज्यादा हूं, सूरत-शक्ल भी अच्छी नहीं मेरी ... पर तुम पाओगी, दिल मेरा इतना बुरा नहीं है, जितना मैं बाहर से दिखता हूं । तुम्हारी मासूमी का पाक साया मेरे गुनाहों को नेस्तनाबूद कर देगा, ऐसी उम्मीद है मुझे ... फिर अगर मेरी जिन्दगी में आने के बाद भी, तुम्हें कोई ज्यादा माकूल आदमी मिल सके, तो मैं रोकूंगा नहीं तुम्हें । तुम्हें हक रहेगा, जिसे तुम्हारा दिल चाहे, उसकी जिन्दगी आबाद करो । वहां तुम मुहब्बत के जरिये जाओ, महज़ रोटी-कपड़ा ढूंढने या सहारा पाने नहीं ।" 67

नूर भागूबाई के यहां थी । एक बार दादा उसे कहते हैं — " तुम इतनी मासूम हो, इतनी अच्छी लड़की हो, किसी अच्छे आदमी से शादी कर लो ? यहां तो तुम्हारी जिन्दगी बरबाद हो जाएगी ।" 68 तब उसके जवाब में नेर ने कहा था —" अच्छा तो दूर, कोई बुरा भी नहीं मिलता, जिसमें हजार ऐब हों, हजार बुराइयाँ हों — पर मुझे इस दोजख से निकाल ले । इज्जत और आबरू

की दो रोटियां , तन ढंकने-भर को कपड़ा दे — बस , फिर मुझे चाहे वह लाख सताए , लाख दुःख दें ..."[69] तब दादा ने नूर को अपनी बाहों में भर लिया था और कहा था —" जो तुझ जैसी मासूम बीबी पाकर भी बुराइयों का दामन नछोड़ सके , उससे ज्यादा कमनसीब और कौन होगा ? इधर देख , मेरी ओर । मुझे अपना शौहर कबूल कर सकेगी ?"[70]

उपन्यास के अन्त में खूंखार दादा को "कोठारी मेन्शन" के नीचे जब वीरेन देखता है , तब वह सोचता है कि वह खूनी बदमाश न जाने क्या फसाद पैदा करे और तब वह पुलिस को टेलीफोन करके बुला-ने की सोचता है । रेवा वीरेन को रोक देती है । तब वीरेन कहता है — वह खूनी है , बदमाश है , न जाने क्या कर बैठे । तब रेवा उत्तेजित होकर कहती है —" वह खूनी है , बदमाश है — लेकिन आपकी तरह हैवान नहीं है ।"[71] आगे वह कहती है —"जिसने आपको आश्रय दिया , अपनी बीबी तक दे दी — उसका भी आपको यकीन नहीं ? दादा लाख बुरे होते हुए भी , मुझे कितना चाहते हैं ? चाहते तो उस दिन , आपके सीने पर से यों ही उठकर नहीं चले जाते । — जाइए , आप पुलिस को टेली फोन कीजिए ! मैं दादा को ऊपर बुलाती हूं —"[72]

दादा ऊपर आकर कहते हैं —" तुम्हें याद होगा नूर , तुम्हें लाने के दिन मैंने कहा था , " जब भी तुम्हें मनपसंद आदमी मिले , तुम चली जाना । ... अपना वह कौल कल मुझे याद नहीं रहा था । ... माफी की गरज तो मुझे है ठाकुर । ... सुनो कृष्ण सिनेमा के पास तुम्हारे खुदा को मैं भी सलाम कर आया हूं । ... मुसलमान नहीं मानते होंगे , मैं तो इन्सान से ज्यादा कुछ नहीं हूं , नूर । फिर जिसे तुमने सलाम किया , वही मेरा खुदा है ।"[73] तो यह है वह खूंखार , गुण्डा , बदमाश मुंगरापाड़ा का युसुफदादा । एक स्थान पर नूर दादा के बारे में कहती है —" वह बदमाश था , जुआरी-शराबी

था , चोर था और खूंख्वार था — पर उसके पहलू में जो दिल था, वह बदमाश का होते हुए भी शरीफ , चोर का होते हुए भी ईमानदार और खूंख्वार भेड़िए का होते हुए भी कोमल था ।" 74

प्रस्तुत उपन्यास में बरिअमे वीरेन , जो एक तरह से लेखक का ही रूप है , वेश्या के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहता है — " फिर आप यह क्यों सोचती हैं , कि वेश्या कलंकिनी होती है , घृणा की पात्र होती है ? ... मैं नारी के वेश्या रूप को ही उसका श्रेष्ठतम रूप मानता हूं , अपने समाज की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए जिस समय से वे समाज के सारे अत्याचार , सारे रोग-कोढ़ शिरोधार्य कर लेती है — यह कितनी बड़ी तपस्या है ? और कौन ढो सकेगा इसका पातक ? और कौन सह सकेगा इतना उत्पीड़न ? नारी वस्तुतः साक्षात् " दुर्गा क्षमा सुधा-xxxxxxx धात्री है । ... फिर नारी मां पहले है , उसे हम अपने हाथों कोठे पर बिठा आएं , उसे अपना जिस्म बेचने पर मजबूर कर दें , तो शरम नारी को क्यों ? शरम तो उन दैत्यों को आनी चाहिए , जो इतने बेशरम हो गए हैं कि जिसके आंचल में छुपे पयोधरों का अमृत पीकर सौ बरस लम्बी उम्र पाते हैं , xxxxxx उसीका चीर-हरण कर उसे पशुओं की तरह खरीदते-बेचते हैं । शरम तो उन्हें आनी चाहिए , जो छज्जों की ओर रूमाल हिलाते , सीटी बजाते समय इतना भी नहीं सोचना चाहते , कि किसने इन हजारों सीता-सावित्रियों के पयोधरों को यों बाजार में बिकवाकर , धरती को इतने अमृत से वंचित कर दिया ।" 75

गुजरात में शैलेश मटियानी पर सर्वप्रथम शोधकार्य करने वाले प्रज्ञाचक्षु अनुसंधित्सु डा. सलीम वोरा ने प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में लिखा है — " कुछ भी हो यह उपन्यास प्रत्येक पाठक के बौद्धिक , वैचारिक और आत्मिक धरातल को झकझोर देने वाला एक मर्मवेधी उपन्यास है । जो उसकी गहराई तक जाकर गोता लगा आया , उसका हृदय खिल उठा और वह सच्चे मन से शैलेश मटियानी का

प्रशंसक बन गया और जिन्होंने किनारे पर रहकर ही मोती निकालने चाहे वे कोरे रह गए । उन्हें इस उपन्यास में बुराई ही बुराई दिखी , अच्छाई कहीं नज़र नहीं आई ।" 76

यह टिप्पणी देना इसलिए आवश्यक हो गया कि जब यह उपन्यास प्रकाशित हुआ था , उस पर दो प्रकार की टिप्पणियाँ हुई थीं । एक में उसे प्रशंसनीय शैली का उपन्यास कहा गया था , तो दूसरी में उसे निहायत हल्के प्रकार की सेक्स-भावना से लिप्त रचना करार दिया था । किन्तु अब हिन्दी साहित्य वाले मटियानीजी पर नये सिरे से सोचने लगे हैं और उनके कृतित्व का सही मूल्यांकन अब हो रहा है । मटियानीजी की मृत्यु के उपरांत प्रकाशित "पहाड़" के विशेषांक में ममता कालिया ने प्रस्तुत उपन्यास को मटियानीजी की महत्वपूर्ण रचनाओं में गिनाया है —" रचनाकार के रूप मटियानीजी अभी भी हमारे बीच हैं । उनकी रचनाओं में आम जीवन के मौलिक संघर्ष , स्वप्न और सरोकार सम्पूर्ण स्पन्दन पाते हैं । उनके उपन्यास " बोरीवली से बोरीबन्दर तक " की बम्बई आज की पाँच सितारा मुंबई से एकदम अलग किस्म की नगरी है । इतनी पठनीय रचना लिखने वाले इस रचनाकार के खाते में एक से एक अविस्मरणीय कहानियाँ हैं ।" 77

§14§ रामकली :

"रामकली" श्री शैलेश मटियानी का उपन्यास है । वह इलाहाबाद की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है । यह रामकली और बसन्ता की कहानी है । रामकली एक सुंदर , अबोध और मुग्ध किशोरी है । पर उसका विवाह बसंता जैसे अधेड़ व्यक्ति से होते हैं । प्रेमचंद कृत "सेवासदन" की भाँति कारण यहाँ भी आर्थिक है । दहेज नहीं जुटा पाने के कारण सुमन की माँ उसका ब्याह दुहाजू गजाधर से करती है । वहाँ मध्यवर्गीय गरीबी है । प्रस्तुत उपन्यास में निरूपित गरीबी

निम्नवर्ग की दारूण गरीबी है । मरता हुआ रामकली का बाप रामकली को बसंता के हवाले कर जाता है । बसंता पिता और पति की भूमिका बखूबी निभाता है ।

रामकली की स्त्रीत्व का पराग जब पगुराने लगता है, उसकी विपुल सौन्दर्य-राशि का वारूणी जब उसके मन को मोहने लगता है और उसे जब इस बात का अहसास होने लगता है कि उसका भुवन-मोहन सौन्दर्य बसंता जैसे व्यक्ति के लिए नहीं, किन्तु तब तक वह बसंता के दो बच्चों की माँ बन चुकी थी । रामकली में अपने सौन्दर्य के कारण जब उक्त प्रकार का एहसास जगता है, तब वह अपने आपको रोक नहीं पाती और बसन्ता को छोड़कर वह कमला पहलवान और ठेकेदार अमोलक चन्द तक पहुँचती है । रामकली की अभुक्त काम-वासना उसे कमला पहलवान तक पहुँचाती है, तो वैभव की आकांक्षा उसे अमोलक चन्द तक ले जाती है । इस प्रकार परंपरागत दृष्टि से सोचने वाले "प्योरिटियन" लोग उसे "कुलटा" या "वेश्या" कह सकते हैं ।

किन्तु रामकली जैसी वेश्याचरण वाली स्त्री में मटियानीजी के सर्जक को "सतीत्व" दिखता है । मटियानीजी यह देख पाये हैं, और यह उन्होंने कई उपन्यासों और कहानियों में भी दिखाया है कि अनेक पुरूषों द्वारा संभोगित वेश्या अपनी व्यक्तिगत निष्ठाओं में कमल-सी निःस्पृह रहते हुए उस स्त्री से अधिक पवित्र होती है जो एक पुरूष द्वारा भोगी जाने पर भी अपनी मानसिकता में अनेक पुरूषों द्वारा व्यभिचरित होती है । रामकली के जीवन में अलग-अलग समय पर अलग-अलग पुरूष आते हैं, पर एक समय में उसके जीवन में निष्ठा किसी एक के प्रति ही पायी जाती है । जब वह औरों के साथ थी, तब भी वह अपने बच्चों को मिलने बसन्ता के पास जाती थी और कभी-कभी तो रात में ठहर भी जाती थी, परन्तु वह अपने उस ब्याहता पति को अपने पास फटकने भी नहीं देती थी । उसके

स्त्रीत्व का या कहिए सतीत्व का पुण्य-प्रकोप तब प्रकट होता है, जब ठेकेदार अमोलक रामकली को एक निहायत बाजारू औरत समझते हुए अपने दो व्यावसायिक मित्रों को रामकली के साथ मजे लुटने-लुटाने के उद्देश्य अपने यहाँ ले आता है। तब घायल शेरनी की भाँति वह अमोलक पर टूट पड़ती है और कहती है — "हरामी, बिना अपनी मरजी के तो मैंने अपने ब्याहते को भी नहीं छूने दिया, तू सहुरा कौन होता है साले।" 78

इस उपन्यास के संदर्भ में मटियानीजी कहते हैं — "कहाँ तक जाता है किसी रामकली — जैसी औरत का स्त्रीत्व और कहाँ तक बसंतलाल की संवेदना का दायरा, इन्हीं दो छोरों पर टिका है, उपन्यास का पूरा वितान। सामान्य से सामान्य आदमी के भीतर भी अपनी तरह का अपूर्व संसार है, किन्तु दिखता है तभी, जब कोई झाँके और खुद का यह संसार भी कहाँ दिखता है, बिना झाँके।" 79

रामकली जितने विपुल सौन्दर्य की मालकिन है, बसंता उससे अधिक महान चरित्रवाला एक सामान्य व्यक्ति है। नारी-शोषण और प्रताड़ना में, छाती और मूंछ के बालों में तथा केवल अपने बाहुबल में ही अपना पौरुष देखनेवालों को, बसंता एक कापुरुष, नामर्द लग सकता है, बल्कि अस्वाभाविक और अप्राकृतिक भी; किन्तु जिन्दगी की हकीकतों से वास्ता रखने वाले लोग जानते हैं कि कई बार हकीकतें कल्पना से भी अधिक ज्यादा रोमांचक होती हैं — "रीयालिटी इज़ मोर स्ट्रेन्जर धैन फिक्शन।" 80

ऐसे लोग हर कहीं नहीं मिलेंगे, क्योंकि यहाँ तो अपहर्ता स्त्री की भी अग्नि-परीक्षा ली जाती है। धोबी की बात पर सीता को त्यागने वाले और किसीकी परवाह न करते हुए पत्नी को बेटी की भाँति बिदा करने और उसे पुनः अपना लेने वाले, उसके बच्चों को खूब प्यार व जतन से रखने वाले और उन बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए बैन्क में पैसा जमा कराने वाले बसंता में भला क्या तुलना हो

सकती है ? महान को महान बनाना , तो बड़ा आसान-सा काम है , लेकिन सामान्यता में महानता का अन्वेषण कला के उच्च शिखरों को इंगित करता है । प्रेमचंद , मण्टो , गोर्की , एमिल जोला और कुप्रिन की परंपरा में यहां बैठते हुए नज़र आते हैं ।[8]

अभिप्राय यह कि रामकली और बसन्ता को सामान्य-तुच्छ बुद्धिवाले लोग क्रमशः वेश्या और नामर्द कह सकते हैं ; लेकिन दृष्टि-संपन्न लोग इन दोनों की महानता को "हैट्स आफ " करेंगे ।

(15) किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई :

"किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " श्री शैलेश मटियानीजी का उपन्यास है । यह उपन्यास भी मुंबई की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है । उसकी भाषा-शैली बिलकुल अलग प्रकार की और विशिष्ट है । इसमें लेखक ने नर्मदाबेन सेठानी और केला बेचनेवाली मराठीबाई (गंगूबाई) के माध्यम से मोहमयी मायानगरी मुंबई के दो प्रकार के जीवन-स्तर को उकेरा है । एक उच्चवर्ग है , अभिजात वर्ग है , संपन्न और समृद्ध वर्ग है ; दूसरा निम्नवर्ग है , कमाने-खाने वाला वर्ग है । जिस प्रकार "कंकाल" उपन्यास में प्रसादजी ने अभिजात वर्ग की कलई खोल कर रख दी है ; ठीक उसी प्रकार यहां भी यह तथाकथित वर्ग अपने चरित्र में कितना खोखला है , इसे लेखक ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में चित्रित किया है ।

जहां तक वेश्या-प्रकरण का सवाल है , इसमें दो प्रकार की वेश्याओं को चित्रित किया गया है । एक जिसे हम परंपरागत अर्थ में वेश्या कहते हैं । वह कुलटा होती है , परपुरुषगामिनी और बहुपुरुषगामिनी होती है । नर्मदाबेन सेठानी इस प्रकार की औरत है । विवाह तो उसका सेठ नगीनदास हुआ है , किन्तु सेठ शारीरिक क्षमता की दृष्टि से लगभग समाप्त हो चुके हैं । नर्मदाबेन सेठानी की उद्दाम जवानी को थामने की शक्ति अब उनमें नहीं है । एक तो दोनों की वय में काफी फासला है , दूसरे अपने पूर्व-जीवन में सेठ बेफाम यौन-कर्म

कर चुके हैं और अब उनकी युवानी के खाते में "बैलेन्स" नील हो चुका है । ठीक इसी बिन्दु पर यह उपन्यास भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "रेखा" से मेल खाता है, किन्तु वह अलग इस अर्थ में है कि उक्त उपन्यास की रेखा प्रोफेसर से चोरी-छिपे यह सब करती है; जबकि यहां सेठानी नर्मदाबेन सेठ की नाक के नीचे और उनकी जानकारी में यह सब करती है । बल्कि अनेक बार सेठ ही उनके लिए उसकी व्यवस्था कर देते हैं । तो वेश्या का एक प्रकार यह है — कुलटा, पुंश्चली बहुपुरुषगामिनी वाला रूप । और दूसरा रूप प्रस्तुत उपन्यास में पुरुष-वेश्या ‖ मेल-प्रास्टिट्यूट ‖ का मिलता है ।

सेठानी नर्मदाबेन एक विपुलवासनावती ‖ निम्फो ‖ औरत है । किन्तु वह शुरू से ऐसी नहीं थी । अपने कालेज के दिनों में वह एक युवक को चाहती थी और उससे यदि विवाह हो जाता तो नर्मदा को यौन की इस वैतरणी को शायद न तैरना पड़ता । सेठानी नर्मदाबेन में एक भावुक नारी, एक मां का दिल भी था, किन्तु सेठ नगीनदास में उसे मां बनाने की क्षमता नहीं थी । फलतः नारी का दूसरा रूप, उद्दाम वासनावती नारी का रूप हमारे सामने आता है । सेठ नगीनदास दारूवालियों, कामवालियों तथा रूपसी वारांगनाओं के पीछे अपना सर्वस्व लुटा चुके थे और अब सेठानी को तृप्त करने की कुव्वत गंवा चुके थे । सेठ भी अपनी इस लाचारी को जान चुके थे इसलिए अपने परिवार तथा कुल की मर्यादा के भीतर रहकर वे नर्मदा के लिए व्यवस्था ‖? ‖ कर देते हैं । सेठ नर्मदाबेन से कहते हैं —"घर के अन्दर तुम जो चाहो करो, घर से बाहर मर्यादा की रेखा न लांघ बैठना । तुम्हें हर चीज़ यहीं उपलब्ध हो जाएगी ।"82 सेठ नगीनदास उसके लिए रामदुलारे दूधवाले की व्यवस्था करते हैं । पर सेठानी लाख विपुलवासनावती थी, पर मन सौंपने पर ही तन सौंपने का उसका अपना संकल्प, उसका नियम था । "उसका प्यार खेल के मैदान से बाहर चली आई "फुटबाल" नहीं था, कि जिसके करीब पहुंचे वही "किक" करे । वह किसी शानदार लान में

खेली जानेवाली "टेनिस" थी ।"[83]

रामदुलारे सेठानी की डांट खाकर जब जाने लगा तो सेठने कहा —" नौकरी नहीं करने का क्या ?"[84] रामदुलारे कहता है — " नौकरी तो करने का है, सेठ । बर्तन घिसने को दो, चूल्हा-चक्की का काम दे दो । किसी मिल के फाटक पर दरबान बना दो, चौबीस घण्टे पहरा भरेगा । पर, सेठानी हमको भाई बोलती है । उनके ऊपर बुरी नज़र कैसे डालेगा ?"[85] और सेठ उसे चोरी के इल्जाम में नासिक सेण्ट्रल जेल में तीन-चार साल के लिए भिजवा देता है ।

अपने कालेजियन मित्र क्रैक चन्द्रकान्त के पश्चात् नर्मदा ने सच्चा प्यार तो सिने-बांसुरी-वादक बांकेबिहारी से ही किया था और उससे उसको गर्भ रहा था, किन्तु बाद में सेठ ने उस "कनेक्शन" को ही काट दिया और अपने रसूख का इस्तेमाल करके उसे एक "अकस्मात" का रूप दे दिया । बाद में वह बच्चा भी अकस्मात में मर गया । उसके बाद हमें नर्मदा का "निम्फो" रूप देखने को मिलता है । लेखक ने उसका व्यंग्यात्मक चित्रण इन शब्दों में किया है —

"उसके पास (नर्मदा के पास) दौलत की ताकत थी । उसने अब दौलत को अपने लिए इस्तेमाल करना सीखा और इस्तेमाल करने का ऐसा तरीका सीखा, कि नगीनभाई को भी एतराज नहीं रहा ... उसने मंदिर बनवाया, पुजारी अपनी पसंद का रखा । उसने "अनाथालय खोला, मैनेजर अपनी चाहत का रखा । उसने गर्ल्स-स्कूल खुलवाया, तो उसका प्रिंसिपल अपनी मोहब्बत के स्कूल में भर्ती कर लिया ।"[86]
इसी संदर्भ में वे आगे लिखते हैं —" यों, वह एक "सुसैटी-वुमन" बन गई । ... "सुसैटी-वुमन" ... जो ऐसी खूबी से आशनाई और अय्याशी के खेल खेल सके, कि खेल "गुल्ली-डण्डे " का हो और मैदान "किरकेट" का दिखाई पड़े ; "डिरामा" लैला-मजनू और "शीरीं -फरहाद" का खेला जाए, पर "सीन" रामायण-महाभारत, वेद-कुरान का दिखाई पड़े ; पर्दे के अन्दर जिस्म और जवानियों की कालाबाजारी के सौदे

हों , पर पर्दे पर तस्वीरें साधू-भगतों और बरमा-बिस्नू की बनी हुई हों ।"87 ध्यान रहे उक्त कथन मे लेखक ने वस्ताद {उस्ताद} के द्वारा और वस्ताद की भाषा और शैली में ही कहा है ।

वासना और हवस के इस खेल से तन तो तृप्त होता है , पर मन प्यासा ही रहता है । "सुसैटी-चुमन" की उक्त स्थिति के बाद दश-बारह साल पश्चात् नर्मदाबेन के मन में पुनः प्यार-मुहब्बत की आंधी आती है , और यह आंधी लाता है कवि कृष्णकुमार , जिसे नर्मदा प्यार में "करसन" कहती है । सेठानी के यहां हुई एक कवि-गोष्ठी में यह नवोदित कवि आता है और बरबस सेठानी के दिल का कब्जा ले लेता है । पर यहां भी प्रेम की वही त्रासदी सामने आती है -- "ए" बी को चाहता है , पर "बी" तो "सी" को चाहता है । सेठानी से पहले ही कृष्णा अपना दिल "एक आणे ला दो और दोन आणे ला तीन" केले बेचनेवाली गंगूबाई को दे देता है । और गंगूबाई भी उसे दिलो-जान से चाहती है । सेठानी उसके सामने गिड़गिड़ाती है , उसे लम्बे-चौड़े प्रलोभन देती है , पर दिल का सौदा करने वाली गंगूबाई दौलत का सौदा नहीं करती । वह नर्मदाबेन के सारे प्रपोजल्स ठुकरा देती है --

" गंगूबाई ने नोटों को उठाकर सेठानी के पलंग पर रखते हुए , ज़वाब दिया -- " सेठानी बाई , ही तुमची दौलत मका नको ... तो तुमचा बांदरा चा फ्लेट मला नको ... पण , तो तुमचा करसन बाबू ... तो माझा मनाचा मीत गोविन्दा ... मला फक्त तोज पाहिजे ! ... सेठानी बाई , ही तुमची नौकरी पण मला नको ।" 88

इस ~~प्रकार~~ प्रकार मटियानी भी प्रेमचन्द की भांति यही प्रस्थापित करना चाहते हैं कि उच्च भावों और मानवता पर किसी वर्ग-विशेष का इजारा नहीं है । सेठानी और गंगूबाई को आमने-

सामने रखकर "विसदृशता के सिद्धान्त " (थियरी आफ कोन्ट्रास्ट) के द्वारा मटियानीजी दोनों के चरित्र की तह-दर-तह खोलते हैं ।

वैसे तो सेठानी नर्मदाबेन जिन मर्दों का इस्तेमाल करती हैं उनमें से कुछेक को छोड़कर , हम उन्हें "पुरुष-वेश्या " (मेल - प्रोस्टिट्यूट) ही कह सकते हैं ।; किन्तु उपन्यास में एक प्रोफेशनल पुरुष-वेश्या भी मिलता है । प्रकटतः वह ऊँची सोसायटी की स्त्रियों में खादी का झोला लेकर घूमता है और समाज-सेवा का नाटक करता है , किन्तु उसकी वास्तविक "सेवा" तो इन सोसायटी-वुमैन की होती है । पैसे लेकर वह उनकी यौनेच्छा को संतुष्ट करता है । उपन्यास में एक स्थान पर नर्मदा कृष्णा को बताती है —

" एक खन्ना था ... पंजाबी । उससे मैंने अपनी वासना-पूर्ति की । यह सौदा सिर्फ इसलिए एकदिन केन्सल हो गया , कि मैं उसे लेकर दो बार "आस्ट्रिया " में गई , पर पैसे सिर्फ एक बार के दिए । मैंने फिर देने की बात कही , तो कहने लगा , कि मैं तो एडवान्स लिया करता हूं । ... एक दिन मैं उसके साथ होटल गई , जब शाम को भी "सीक्रेट - रूम " लेने की इच्छा मैंने प्रकट की , तो वह खन्ना बोला — " मैं मजदूर नहीं हूं । इस बिल्डिंग को बनाए रखना , मेरी बिजनेस का पहला उसूल है । " और उसने बड़ी बेशर्मी से अपने शरीर पर हाथ फेरा । ... " [89] खन्ना की बातें बिलकुल "प्रोफेशनल मेल-प्रोस्टिटयूट " जैसी हैं । "नदी फिर बह चली" में पटना की वेश्याएं भी इस प्रकार के भाव-ताल करती हैं — " कितनी बार बैठेंगे ? एक बार या दो बार ? " [90] मधु कांकरिया के उपन्यास " सलाम आखिरी " में वेश्याओं के "रेट" के बारे में एक स्थान पर उल्लेख किया है —" रेट भी यहां कई तरह के । शार्ट रेट । लौंग रेट । शोर्ट रेट यानी पांच-सात मिनट से पन्द्रह-बीस मिनट का समय । लौंग रेट यानी दो-तीन घण्टे से लेकर पूरी रात तक का अन्तराल ।" [91]

§16§ कबूतरखाना :

"कबूतरखाना" शैलेश मटियानी का मुंबई ~~xxx~~ के भुलेश्वर इलाका की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। लेखक के शब्दों में "कबूतरखाना" एक पंखनोचे कबूतर की अन्दरूनी तड़प और बाहरी गुटरगूं की एक बोलती हुई तस्वीर है। बम्बई के सेठ-सेठानियों के कबूतरनुमा नौकर गणपत रामा की मुंहबोली दास्तान है।" 92

मुंबई में घरेलू कामकाज — बरतन भांडा, झाडू-पोचा, कपड़े धोना, खाना बनाना आदि — करने वाले नौकरों को "रामा" कहते हैं। बम्बइया भाषा में रामा को "घाटी" भी कहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की कथा एक ऐसे ही रामा-घाटी के मुंह से उसकी ही भाषा तथा शैली में कही गई है। इस घाटी का नाम है गणपत। गणपत भाऊ के माध्यम से दूसरे रामाओं की बात भी कही गई है। अगर गणपत भाऊ के शब्दों का प्रयोग करें तो " जो आंखी देखा, जो कानों सुना — वोच बोलता।" 93 गणपत रामा के शब्दों में कहें तो यह पूरा मुंबई एक बकूतरखाना है जिसमें गणपत, सखाराम, दत्तू, पटवर्धन, परदेशी, विट्ठल जैसे कबूतरनुमा घाटी सेठों के भांडी-बरतन मांजने के साथ-साथ वसुंधराबेन, यशोदादेवी, नीलाम्बरीदेवी, नर्मदाबेन जैसी सेठानियों पर भी हाथ साफ कर लेते हैं। ये वैभव-विलास में पली ~~xxxxxxxxxxxx~~ विपुलवासनावती § निम्फो § सेठानियां रामाओं से, नौकरों से, खानसामाओं से, मालियों और सोफरों से अपनी यौन-खुजली मिटाती हैं। इनसे इनका कोई आत्मिक संबंध नहीं होता, फलतः उनको पूरी तरह से चूसकर बादमें दूध में से मक्खी की तरह निकाल बाहर कर देती हैं। इस प्रकार वे इन "कबूतरों" का यौन-शोषण करती हैं। इन कबूतरों को एक तरह से हम "मेल-प्रोस्टिट्यूट" ही कह सकते हैं।

डा. सलीम वोरा के शब्दों में कहें तो " ये सेठानियां अपने नौकरों से अपने देह की आग क्यों मिटाती हैं? ये सेठ अपनी परीनुमा

सेठानियों को छोड़कर पवनपुल और त्रिभुवनरोड के चक्कर क्यों काटते हैं ? ‖ मुंबई के ये विस्तार "लालबत्ती विस्तार " के रूप में भी कुख्यात है ‖ क्यों कई सेठ बगीचों में "छोकरों से " एक रूपये वाली "स्पेशल मालिश " करवाते हैं ? क्यों सेठ लोग कच्ची उम्र के "लौंडों " के पीछे मारे-मारे फिरते हैं ? क्यों गंगाबाई , कमलाबाई , कुलसुम और सइदन जैसी बहनों को वेश्यागिरी करनी पड़ती हैं ? गोलपीठा , कमाठीपुरा , पिलहाउस , पवनपुल और त्रिभुवन रोड किनके कारण आबाद हैं ? किसी करसनभाई सेठ को उसकी पत्नी नौकर की मदद से क्यों जलवा डालती है ? कल का नौकर दत्तू , दत्तात्रेय सेठ कैसे बन जाता है ? पानी की हाटड़ियों के जरिये नागप्पा-शेषप्पा जैसे गुण्डों का राज कैसे चलता है ? कैसे यह मोहमयी फिल्मीस्तानी मायानगरी भारतीय संस्कृति की ऐसी-तैसी कर रही है ? आज़ादी के दस वर्षों में ही एक कंगाल मवाली-सा पोलिटिशियन चार-चार बिल्डिंगों का मालिक कैसे बन जाता है ? इन सब प्रश्नों के उत्तर हमें गणपत भाऊ की जबानी सुनने को मिलते हैं और इस प्रकार तथाकथित अभिजात वर्ग की पोलपट्टी भी उघड़ती जाती है । उपन्यास की भाषा से जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के उपन्यास "मुरदाघर " की स्मृति ताज़ा हो जाती है ।" 94

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास जहां गणपत भाऊ जैसे रामाओं के द्वारा "मेल-प्रोस्टिट्यूशन " की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है , वहां उसमें उक्त लालबत्ती विस्तार की गतिविधियों का भी यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है । इन कबूतरों को कई बार दोहरी ड्यूटी करनी पड़ती है , बल्कि तिहरी भी कह सकते हैं । एक तरफ इनको सेठानियों को खुश करना पड़ता है , दूसरी तरफ इनको सेठों के बिस्तर भी गरम करने पड़ते हैं और तीसरी तरफ उनको कई बार उनकी "बेबियों " को भी खुश करना पड़ता है । कई बार सेठों के साथ गुदा-मैथुन ‖ सोडोमी ‖ करना या करवाना पड़ता है । मटियानीजी की ही "विट्ठल" कहानी में एक पारसी सेठ की लड़की रुस्तमा कहती है —" "तो मैं कहां तुझ पर इल्जाम लगा रही हूं । " — रुस्तमा उससे लिपट गई — "पिछले

बरस भी पापाजी रत्नागिरी से एक रामा लेके आए थे । वह पापाजी, बड़ी बाई और मेरे को — तीनों को संभालता था ।" 95

§17§ मुरदाघर :
============

"कटा हुआ आसमान" के पश्चात् जगदम्बाप्रसाद दीक्षित की यह दूसरी औपन्यासिक कृति " मुरदाघर" मानवीय संवेदना की घनीभूत अभिव्यक्ति है । प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1974 में हुआ था और उससे पूर्व मुंबई की झोंपड़पट्टियों का नग्न-यथार्थ शैलेश मटियानी के " बोरीवली से बोरीबन्दर तक " तथा "कबूतरखाना" तथा उनकी मुंबई की पृष्ठभूमि पर आधारित लगभग दर्जन-भर कहानियों में उद्घाटित हो चुका है । इस जीवन की दर्दनाक व भयानक विभीषिका मराठी लेखक की कृति "चक्र" में भी दृष्टिगोचर होती है, जिस पर फिल्म भी बन चुकी है । किन्तु "मुरदाघर" को पढ़कर संवेदनशील पाठक के रोंगटे खड़े हो जाते हैं । यहाँ "संवेदनशील" शब्द को रेखांकित किया जाना चाहिए, क्योंकि कुछेक औपन्यासिक आलोचक तो इसे पठनीय ही नहीं समझते । इस अर्थ में यह विवादास्पद कृति भी है । साहित्य और कला में श्लीलता-अश्लीलता के प्रश्न उठते रहे हैं और उठते रहेंगे । पर उनको हमारा एक ही उत्तर है — " खंडितx खंडित सत्य अश्लीलता है । " 96 और "मुरदाघर" का सत्य भी उसकी समग्रता में लेना चाहिए । जोला, कुप्रिन, मण्टो, मटियानी के संवेदनशील पाठकों में को प्रस्तुत उपन्यास की झोंपड़पट्टी की वेश्याओं के जीवन में भी मानवता-करुणता और अतएव पवित्रता के दर्शन होंगे ।

"मुरदाघर" सामाजिक विसंगतियों और विषमताओं का यथार्थपूर्ण चित्रण है । वर्तमान अर्थव्यवस्था के तहत गाँवों के उजड़ने की प्रक्रिया जैसे-जैसे तेज़ होती गई, महानगरों में गन्दी बस्तियों और झोंपड़पट्टियों या झुग्गी-झोंपड़ियों का उतना ही तेज़ी से विस्तार

हुआ । इन बस्तियों में मानव-जीवन का जो रूप विकसित हुआ , वह काफ़ी विकृत और अमानवीय है । वेश्यावृत्ति और अपराध-कर्म का यहां विशेष रूप से विकास हुआ । "मुरदाघर" में झोंपड़पट्टी की वेश्याओं की दयनीय स्थिति का शक्तिशाली चित्रण है । विद्रूप यथार्थ "मुरदाघर " के केन्द्र में जरूर है , लेकिन उपन्यास की मुख्यधारा करुणा और संवेदना की है । विकृत से विकृत स्थितियों से गुजरते हुए भी उपन्यास के पात्र नितान्त मानवीय और संवेदनशील हैं ।"[97]

इतना ही नहीं "मुरदाघर" में वर्तमान राज्य-तंत्र के अमानवीय रूप को भी उकेरा गया है । बत्तीस-तैंतीस साल गुजर गये । किन्तु स्थितियों में ज्यादा बदलाव नहीं आया है । पुलिस-स्टेशन , हवालात , कचहरी , वगैरह का जो रूप सामने आता है , काफ़ी अमानवीय और नृशंस है । झोंपड़पट्टी के इस दुर्गंध युक्त जीवन में सभ्य समाज के सारे मूल्य धराशायी हो गए हैं । इसमें एक-एक , दो-दो , या अठन्नी या चाय-टर्रा के एक-एक कप में शरीर का सौदा करने वाली , खड़िया के पावडर से चेहरे को थोपने वाली , ग्राहक के लिए एक-दूसरे पर झपटनेवाली तथा गाली-गलौज करने वाली , लेकिन फिर दूसरे ही क्षण एक-दूसरे के सुख-दुःख में हाथ बंटाने वाली और रोनेवाली मैना , पार्वती , लैला , नयना , मरियम , बशीरन , नूरन , हीरा , जमिला जैसी वेश्याएं हैं । इस विषय पर जयंत दळवी कृत मराठी उपन्यास " मा हिम ची झोंपड़पट्टी " (चक्र) उपलब्ध होता है । प्रस्तुत उपन्यास की स्थितियां बहुत-कुछ उससे मिलती-जुलती है । उर्दू के सुप्रसिद्ध कथाकार कृष्ण चन्दर ने भी मुंबई के इस घृणित जीवन को अपने उपन्यासों तथा कहानियों में चित्रित किया है । शैलेश मटियानीजी का जिक्र तो हम ऊपर कर ही चुके हैं । के. अब्बास की एक फिल्म "शहर और सपना " भी इसी झोंपड़पट्टी और फुटपाथ की जिन्दगी पर फिल्मायी गयी थी । उपन्यास की कथा के केन्द्र में मैना नामक वेश्या है जो प्रेम-वंचना की शिकार है । पोपट उसे ढाई रुपये में किसीसे खरीदकर लाया है । उससे वह विवाह करता है , पर बाद

में उससे धंधा करवाता है । वह शराबी -जुआरी टाईप का मवाली है । दो नंबर के व्यवसाय द्वारा रातोंरात धनवान होने के सपनों में वह रात-दिन खोया रहता है और उसके कारण मैना की कमाई को भी वर्ली-मटका और शराब में फूंक देता है । एक स्थान पर वह मैना को अपने सपने की बात करता है --

" मैं सच्ची बोलता मैना । आज मेरा सपना झूठा नहीं होंगा । मैं देखा कि ... वो अपना हाजी सेठ नई क्या ... वो मेरुकु बुलाया । पीछू अपुन तीनों ... मैं, तु और राजू ... उधर गया । पीछू एक भोत बड़ा गाड़ी में हाजी सेठ खुद आया और अपुन को गाड़ी में बैठाके अपना चाली में ले गया । उधर पोलीस का बड़ा साब भी होता । वो मेरे से हाथ मिलाया । पीछू एक उधर एक बाजू से बीस हवालदार आया और दूसरा बाजू से पचीस हवालदार आया । ... मैं सच्ची बोलता मैना ... मैं खुद गिना ... बीस और पचीस । सब मेरेकु सलाम किया ... बीस और पचीस ... दुए से मेंडी ... दुए से पंजा । आज लड़ी आना ज मंगता । आज मेरा सपना झूठा नई होंगा ... मैं सच्ची बोलता । "[98] और इस तरह मैना के वेश्यावृत्ति से कमाए पैसों को वह उड़ा देता है । मैना रोती-झींकती रहती है । पोपट मैना को समझाता रहता है -- " छोटा-मोटा धंदा अपुन नई करेंगा ... एकच धंदा करेंगा ... और सब घाटा पूरा करेंगा ..." इस पर मैना चिढ़ते हुए कहती है -- " कब होंगा तेरा वह एकच धंदा ? मेरी मैयत का पीछू । सुबू से चूल्हा नहीं जला । साम से कुतिया का माफक रौंड मारती । एक घराक नई मिलता । मर गए सबके सब । रोज ऐसाइच । मैं क्या जिनावर हूं बोल ना । क्या बोला था तु ... चाली में खोली लेके देऊंगा ... दो बखत का रोटी ... लुगड़ा ... बिलाउज ... सनीमा लेके जाऊंगा ... ये करूंगा ... वो करूंगा । किधर गया वो सब ? गधी की गांड में घुस गया । साला झूटा । क्या हाल कर दिया मेरा ? आज इसके नीचू तो कल उसके । फिर भी भूकी मरती । उधर छोकरा होटेल का सड़ेला-पड़ेला खाता । कायकू

तब झूटा बात किया तू ? " [99]

ग्राहक के लिए इन वेश्याओं में कैसा गाली-गलोज होता है, उसका एक उदाहरण देखिए — " बशीरन । साली कुत्ती की औलाद । आपा-आपा क्या बोलती । मेरे से बात कर । नई जाती थी तू दौड़-दौड़ के उधर ? बाबू डिरेबर मेरे कने आता था तो तू कायकू मरती थी बीच में ? बोल छिनाल । कायकू आती थी ? मैं कभी क्या आई तेरे बीच में ? जभी शेरू मेरेकु पांच रूपया देता था ... तू कायकू तयार हो गई दो रूपिया में ? बोल ना । अभी हेमइ दे ना जवाब । लगाऊं तेरे थोबड़े पर चप्पल ? " [100]

इस पर बशीरन कहती है — " जा री । बड़ी आई चप्पल मारनेवाली । सूरत देख अपनी । साली खुद तो दूसरोंन का धंदा मारती । हजार बार बोली तेरेकु । अपने छोकरे कू मत लाया कर साथ में । कायकू लाती फिर ? छोकरे कू साथ में लेके धंदा करने कू निकलती ... फिर दूसरे का नाम लगाती । शेरू पांच रूपया देता था तो बाबू कू कायकू बैठाई थी एक रूपिया में ? बोल ना अब ? बड़ी आई । इसकू पांच रूपया देता था शेरू । झूटी कहीं की ... । " [101]

झोंपड़ों और फुटपाथों की इस दुनिया में रोशनी भी आती है अन्धेरा लेकर । बच्चे के जन्म पर यहां खुशी नहीं मातम मनाया जाता है, क्योंकि आने वाला बच्चा उनके व्यवसाय के कपाटों को पहले ही बन्द कर देता है । पेटवाली वेश्या के साथ कौन बैठना {?} पसंद करेगा ? मरियम को पुत्र-प्राप्ति का आनंद नहीं है, क्योंकि पेट की आग ने मातृत्व की ममता के सागर को सोख लिया है । बशीरन अपनी वृद्धावस्था से इसलिए चिन्तित है कि तब रेड पाड़ने वाले पुलिसवाले उसको बुढ़िया समझकर पकड़ेंगे नहीं, और इस प्रकार बीस-पच्चीस दिन में कभी भरपेट खाना मिलता है, वह भी नसीब नहीं होगा । मुरदाघर में कटे हुए पोपट के शव को देखने के लिए बशीरन मैना के साथ जाती है । ध्यान रहे यह वही बशीरन

है जो प्रायः मैना के साथ ग्राहक के लिए झगड़ा करती रहती है । बशीरन को वापस लौटकर ग्राहक पकड़ने की चिन्ता है , क्योंकि तभी उसके दोपहर का खाना जुट पायेगा ।

"मुरदाघर" उसको कहते हैं जहां शव रखे जाते हैं , किन्तु प्रस्तुत उपन्यास में ये गन्दी , घिनौनी बस्तियां ही "मुरदाघर" हैं , जहां आत्माभिमानशून्य , मूल्यहीन , चेतनाहीन ~~जिन्दगि~~ जिन्दगियां ही चलती-फिरती लाशें हैं । लेखक द्वारा अभिप्रेरित यह अर्थ अपनी व्यंजकता और सटीकता में अनूठा बन पड़ा है । लेखक ने एक व्यंग्यात्मक "आयरनी" के साथ इस तथ्य को उजागर किया है कि जिन्दगी-भर मूल्यहीनता के बोझ को ढोने वाले पोपट के शव की कोई कीमत मिल सकती है । मुरदाघर का कर्मचारी कहता है —" "पोपट" का शव वो छोकरा लोग जो इधर पढ़ने के वास्ते आता ... उनका काम में आ जायेगा । हड्डी का भाव भोत जास्ती है आजकल । पूरा जिस्म का ढांचा का भाव तीन सौ रुपया चलता है ।" 102

मैना रात-दिन पोपट को मां-बहन की गालियां देती थी , पर पोपट के मरने पर वह दाढ़ें मारकर रोती है । चाहती तो उसके मुर्दे का व्यापार कर सकती थीं , पर मुर्दे को वहीं छोड़कर ये तीनों {मैना , बशीरन और राजू} चल पड़ते हैं , क्योंकि उनके पास मुर्दा ढोने के लिए "मुर्दागाड़ी " का पैसा भी नहीं था । बशीरन खाकीवाले कर्मचारी को कहती है —" भैया हम लोग भोत गरीब लोक है । ... तुम इसका ठीक काम करवा देंगा ? ... अल्ला तुम्हारा भला करेंगा । ... भोत मेरबानी होंगा तुम्हारा । ... भोत दुआ देंगा हम लोक । ... सच्ची बोलता ... ।" 103 उपन्यास का अन्त इन शब्दों के साथ होता है — " ठीक है । ... हो गया तुम लोक का काम ? चलने का है ? ... हां । ... घूमकर देखती है मैना ... एक मुरदे को । फिर चल पड़ते हैं तीनों । गुजरने लगते हैं उस दुनिया से ... जहां चारों तरफ ... बिखरे हुए हैं मुरदे ... उस दुनिया की तरफ ... जहां और भी हैं मुरदे ... । " 104

प्रस्तुत उपन्यास का मूल्यांकन करते हुए डा. पारूकान्त देसाई ने लिखा है —" "मुर्दाघर" केवल इन जीवित मुर्दा पात्रों से ही अटा-पड़ा नहीं है, प्रत्युत इसमें लेखक ने स्थापित व्यवस्था की विसंगतियों एवं अन्तर्विरोधों के झंझावात में मानवता के झिलमिलाते दीयों के अस्तित्व-संघर्ष एवं मानवीय जिजीविषा के द्वन्द्व को एक मानवीय संवेदनशील दृष्टि एवं दर्द के साथ उभारा है। उसके अभाव में प्रस्तुत कृति एक सामान्य उपन्यास बनकर रह जाती । अनेक मार्मिक स्थलों पर लेखक ने अपनी प्रतिभा की उंगली रख दी है। ... तड़ीपार होते हुए भी पुलिस के डर को भुलाकर जब्बार का अपनी पत्नी हलीना और पुत्र अमजद के लिए, उनके उज्जवल भविष्य के लिए चोरी करना तथा मरणासन्न पिटाई के बावजूद अपराध को अस्वीकृत करते जाना, रोजी का जब्बार के लिए जिन्दगी में पहली बार, भीख मांगना, मैना के साथ हमेशा झगड़ते रहने पर भी पोपट की मृत्यु पर बशीरन का उसके साथ जाना, स्वयं मैना का पोपट के लिए कलपना-बिलखना, काठियावाड़ से भागी हुई, प्रेमी द्वारा प्रवंचित नयी लड़की के प्रति मैना की सहानुभूति, लॉकअप में चमेली के दस्त लगने पर बशीरन का उद्विग्न होना, आसन्नप्रसवा मरियम के लिए जमिला का ग्राहक छोड़कर उसके पास बैठना, मरियम के बच्चा होने पर सब वेश्याओं द्वारा उसे खिलाना, पुलिस की रेड पड़ने पर हिजड़ाओं द्वारा उनको संरक्षण देना आदि ऐसे ही स्थान हैं जहाँ लेखक ने मानवीय संवेदनाओं को तलाशने-तराशने का यथार्थवादी प्रयास किया है।" 105

इसमें लेखक ने वेश्याओं की लाचारदर्जी, उनकी दर्दनाक परिस्थितियां, उनके दुख-दर्द, उनके बच्चों का भयावह भविष्य, उनका जघन्य घिनौना परिवेश, पुलिस द्वारा उनका यौन-शोषण आदि का बड़ा ही यथार्थ नग्न चित्र उनकी ही भाषा-बोली में आलेखित किया है। पोपट के मरने पर उसके अंतिम संस्कार तक के लिए मैना के पास पैसे नहीं है। "मुरदाघर" में उसके मुर्दे को लावारिस छोड़ने के पश्चात् कदाचित् उसे किसीके साथ सोना भी पड़ा हो।

इतनी भयंकर गरीबी कि ये लोग अपने सगे-संबंधियों की मौत का मातम भी ढंग से मना नहीं सकते । यही है "मुरदाघर" । वेश्याओं के संसार का जीता-जागता , बोलता हुआ दस्तावेज़ ।

§18§ अल्मा कबूतरी :
===============

इधर की महिला कथा-लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी रचनाओं की ताजगी तथा सूक्ष्मा के कारण अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है । सन् 1994 में प्रकाशित "इदन्नमम" ने हिन्दी आलोचकों और विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था । "मुझे चांद चाहिए" §सुरेन्द्र वर्मा § की तुलना में मैत्रेयी का यह उपन्यास "नारी-विमर्श" को आगे की ओर ले जाने वाला कइयों को लगा था । मैत्रेयी अपने उपन्यासों में बुंदेलखण्ड को लेकर आयी है । मैत्रेयी के उपन्यासों में "स्मृतिदंश" , § 1990 § , "बेतवा बहती रही" § 1993 § , "इदन्नमम" § 1994 § , "चाक" § 1997 § , "झूलानट" §1999 § , " अल्मा कबूतरी " § 2000 § , " कही ईसुरीफाग " §2004 § तथा "त्रिया हठ" § 2005 § आदि प्रमुख हैं और इन सब उपन्यासों में जिसे अप्रकट वेश्यासमूह कह सकते हैं उस प्रकार की वेश्या-प्रवृत्ति तो कई उपन्यासों में दृष्टिगत की जा सकती है । किन्तु "अल्मा कबूतरी" में वेश्यावृत्ति का जो रूप मिलता है वह "कब तक पुकारूं ? " § रांगेय राघव § में अभिव्यंजित प्रकार का है । अर्थात् विचरणाभिमुख जरायमपेशा जातियां जो चोरी-चकारी आदि के लिए पुलिस-रिकार्ड में दर्ज हैं उनकी स्त्रियों का यौन-शोषण , जो कई बार उनको तथा उनके मर्दों को बिलकुल गलत नहीं लगता है । उसे वे जातियां अपनी नियति के रूप में स्वीकार चुकी हैं और उनकी आदी हो चुकी हैं ।

वैसे तो यह उपन्यास कबूतरा जाति में जन्मी अल्मा की संघर्ष-गाथा है । कबूतरा एक जनजाति § शिड्यूल्ड कास्ट - एस॰ टी § है । अंग्रेजों ने इस जाति को जरायमपेशा घोषित किया था ; किन्तु

यह लोग स्वयं को गौरवान्वित करने के लिए अपना सम्बन्ध रानी पद्मिनी, राणाप्रताप और झांसी की रानी की प्रिय सखी झलकारी बाई से जोड़ते हैं। इधर कुछ नये ऐतिहासिक सत्य सामने आये हैं जिसमें बताया गया है अंग्रेजों के सामने आखिरी युद्ध लड़नेवाली तो झलकारीबाई ही थी। महाश्वेतादेवी के उपन्यास "लक्ष्मीबाई" में भी इस ओर संकेत किया गया है।

उपन्यास में आज़ादी के बाद "एस.टी. आरक्षण" के कारण जो शैक्षिक एवं राजनैतिक चेतना जगी है, उसका आलेखन है। इसके कारण कबूतरा जाति के नवयुवक अपने पैतृक व्यवसायों को छोड़कर नौकरी वगैरह करने लगे हैं और उसके कारण ~~इसमें~~ उनमें आत्माभिमान की चेतना भी जगी है। अल्मा का पिता पढ़ा-लिखा है, अध्यापक है, किन्तु नियतिवश उसे पुलिस का एजण्ट बन जाना पड़ता है। रामसिंह अल्मा को पढ़ाते हैं और उसे सभ्य समाज के लायक बनाते हैं। उसके मन में सुनहले सपने तैरने लगते हैं। रामसिंह अपनी जाति-बिरादरी के लोगों में भी शिक्षा वातावरण पैदा करता है। मंताराम माते और कदमाबाई कबूतरी का बेटा राणा भी रामसिंह के संरक्षण में पढ़ता है। वह अल्मा को प्यार करने लगता है। दोनों के ब्याह की तैयारियां हो रही थीं कि एक घटना ने सारे घटनाक्रम के चक्र को ही बदल दिया। पुलिस रामसिंह को डाकू करार करके एक एनकाउण्टर में मरवा देती है। आजादी के बाद राजनीतिक फायदों के लिए "फेक एनकाउण्टर" की घटनाएं खूब बढ़ी हैं। अभी पिछले दिनों गुजरात में सोराबुद्दिन एनकाउण्टर का केस बहुत ही चगा था। अभी भी यह मुद्दा सुप्रिम कोर्ट में चल रहा है, जिसमें गुजरात सरकार को जवाब देना भारी पड़ रहा है।

रामसिंह की मृत्यु से सबकुछ उलट जाता है। अल्मा सूरजभान जैसे डाकू राजनेता के चंगुल में फंस जाती है। सूरजभान सर्किट हाउस में मंत्रियों और साहब लोगों को लड़कियां पेश करता था। इसे "राजनीतिक भड़वागिरी" के अलावा क्या कहा जा सकता है। इसी

"राजनीतिक भड़वागिरी से ही वह राजनीति के शिखर तक पहुँचता है । मैंता माते का भानजा धीरज सूरजभान की नौकरी में है । धीरज नयी रोशनी का सुशिक्षित युवक है, किन्तु बेकारी से हारकर वह सूरजभान के संरक्षण में आया है । सूरजभान ने उसके लाख रुपये दबोच लिये हैं । उसकी एवज में अपने यहाँ नौकरी देकर वह उससे भी गलत-सलत काम करवाना चाहता है । धीरज को अल्मा पर नज़र रखने का काम सौंपा जाता है । इस निगरानी के कारण वह अल्मा के करीब आता है । उसे अल्मा से प्रेम हो जाता है । वह उसे भगा देता है पर खुद सूरजभान के चंगुल में फंस जाता है । सूरजभान उसे अमानवीय यंत्रणा देते हुए उसका बधिया करवा देता है ।

वह हताश और निराश हो जाता है । उसे अन्य कबूतरा युवकों की सहानुभूति प्राप्त होती है, किन्तु वह अल्मा को भूल नहीं पाता । उधर अल्मा सूरजभान के राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी समाजकल्याण मंत्री श्री रामशास्त्री के यहाँ पहुंच जाती है । धीरज अल्मा को मिलने के लिए रात-दिन तड़पता रहता है । फलतः उसके मित्र हरीसिंह को उस पर तरस आ जाता है । साहस करके वह हरीसिंह के माध्यम से अल्मा तक पहुंच जाता है । एल- दो-पल के लिए दोनों मिलते हैं । अल्मा को धीरज इतना ही कह पाता है —" अपमान हुआ, उसी पर मुग्ध ... यहाँ तक चला आया । अपमान बड़ी ताकत पैदा कर देता है अल्मा ।" [106] किन्तु धीरज जाते-जाते अल्मा को एक पत्र पकड़ा देता है । पत्र में कबूतरा बस्ती की सारी कहानी थोड़े से शब्दों में कही गई थी । कबूतरा जाति के साथ ऊँची जाति के लोगों का अपमानजनक व्यवहार, पुलिस वालों का भी उनके साथ का गलत रवैया, समाज में इस जाति के सम्बन्ध में लोगों की बरसों पुरानी धारणाएं और उनके पूर्वाग्रह, कबूतरा जाति की स्त्रियों का यौन-शोषण ये सब इस पत्र में लिखा गया है । पत्र पढ़कर अल्मा की आत्मिक स्मृति दीप्त हो उठती है । सारा भोगा हुआ यथार्थ और दर्द से भींगा अतीत उसके सामने मानो प्रत्यक्ष हो उठता है । वह अपनों से

मिलने के लिए तड़प उठती है । किन्तु वह असहाय है और असहाय तड़प कभी यथार्थ नहीं बन पाती ।

शनैः शनैः अल्मा रामशास्त्री के लिए सबकुछ बन जाती है : मंत्री , दासी , माता और प्रेयसी । किन्तु उसका यह सुख भी शीघ्र ही खत्म हो जाता है , क्योंकि श्री रामशास्त्री की हत्या करवा दी जाती है । यहां से एक नयी अल्मा का जन्म होता है । वह परंपरा को चुनौती देते हुए शास्त्रीजी को मुखाग्नि देती है । उसके बाद श्री रामशास्त्री की खाली सीट के लिए विधानसभा के प्रत्याशी के रूप में घोषित किया जाता है ।

इस प्रकार यदि देखा जाए तो "अल्मा कबूतरी" अल्मा नामक एक दलित नारी के संघर्ष संघर्ष , उत्कर्ष और उत्थान की कथा है । अल्मा के साथ-साथ यह कबूतरा जाति की भी कथा है । किन्तु उसका आलेखन इस प्रकार हुआ है कि वह केवल कबूतरा जाति की कथा न रह-कर समकालीन राजनीति की ह दिशाहीनता , अपराधीकरण , सत्ता-संघर्ष , बेरोजगारी तथा जीवन-मूल्यों के घोर पतन की कथा भी बन गई है । अल्मा अपने समय की सामाजिक जड़ता पर कुठाराघात करती है । पारंपरिक रूढ़ियों को वह चुनौती देती है । अल्मा की अपराजेय जिजीविषा समकालीन नारी-चेतना व विमर्श को शक्ति , प्रेरणा व दिशा देते हैं । वैसे यदि उसे अल्मा कबूतरी की व्यथा-कथा के रूप में भी देखा जाए तो , तो भी उसके दर्द की एक-एक रेखा पाठक के मन में व्यवस्था के प्रति आक्रोश उत्पन्न करने में समर्थ है और यही लेखिका का सामर्थ्य भी है ।

जहां तक प्रस्तुत उपन्यास में वेश्या-प्रकरण के सम्बन्ध का प्रश्न है , इसमें कबूतरा जाति की स्त्रियों के यौन-शोषण की बात आती है । इसे एक प्रकार की अप्रकट वेश्यावृत्ति ही कहा जायेगा । साथ ही साथ इसमें "राजनीतिक भड़वागिरी" और राजनीतिक वेश्या-वृत्ति को भी रेखांकित किया जा सकता है ।

§19§ सलाम आखिरी :
================

"खुले गगन के लाल सितारे " के पश्चात् मधु कांकरिया का यह द्वितीय उपन्यास "सलाम आखिरी " § 2002 § एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास में कोलकोता के लालबत्ती विस्तारों की अनेक वेश्याओं के जीवन को चित्रित किया गया है । इसे वेश्या-जीवन पर लिखा गया एक संशोधनमूलक § रीसर्च-बेइज्ड § उपन्यास भी कह सकते हैं । समाज में वेश्या की मौजूदगी एक ऐसा चिरंतन सवाल है जिससे हर समाज , हर युग में अपने ढंग से जूझता रहा है । वेश्या को कभी लोगों ने सभ्यता की जरूरत बताया , कभी कलंक बताया, कभी परिवार की किलेबंदी का बाय-प्रोडक्ट कहा और कभी सभ्य सफेदपोश दुनिया की गटर जो उनकी काम-कल्पनाओं और कुण्ठाओं के कीचड़ को दूर अंधेरे में ले जाकर ~~डम्पxकर~~ डम्प कर देता है । इधर वेश्याओं को एक सामान्य कर्मचारी § सेक्स-वर्कर § का दर्जा दिलाने की क्वायद भी शुरू हुई है । उपन्यास के प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है —

" यह उपन्यास वेश्याओं और वेश्यावृत्ति के पूरे परिदृश्य को देखते हुए हमारे भीतर उन असहाय स्त्रियों के प्रति करुणा का उद्रेक करने की कोशिश करता है , जो किसी भी कारण इस बदनाम और नारकीय व्यवसाय में आ फंसी हैं । कलकत्ता के सोनागाछी रेडलाईट एरिया की अंधेरी गलियों का सीधा साक्षात्कार कराते हुए लेखिका सभ्य समाज की संवेदनहीनता और कठोरता को भी साथ-साथ झिंझोड़ती चलती है , और यही चीज उपन्यास को सिर्फ एक कथा-पुस्तक की हद से निकालकर एक जरूरी किताब में बदल देती है ।" 107

वेश्या-जीवन , वेश्यावृत्ति , वेश्याओं के प्रकार , उनका रहन-सहन , उनके रेट , उनकी समस्याएं ; संक्षेप में कहें तो वेश्या-जीवन के लगभग तमाम-तमाम आयामों की सभी तहों को यहां उधेड़ा

गया है । इस दृष्टि से इसे वेश्या-जीवन का महाकाव्य कहा जा सकता है ।

यह नायिका प्रधान उपन्यास है । यद्यपि उपन्यास वेश्याओं के जीवन से सम्बद्ध है, तथापि उसकी नायिका सुकीर्ति कोई वेश्या नहीं है । वह वेश्याओं के जीवन पर कुछ अनुसंधानमूलक कार्य करना चाहती है । एम.एस.सी फर्स्ट क्लास होते हुए भी और अच्छी खासी पर्मेनेण्ट जोब मिलते हुए भी उन्हें ठुकराकर वह पार्ट टाइम जाब करती है और साथ ही फ्री-लान्सर पत्रकारत्व करती है । एकदिन अचानक उसकी कोई साथी लापता हो गयी थी । फिर एक दिन उसकी काम-वाली बाई की नाबालिक दश-बारह साल की लड़की गायब हो जाती है । उनकी टोह लेने के लिए कलकत्ता के सोनागाछी, बहूबाजार, कालीघाट, बैरकपुर, खिदिरपुर आदि लालबत्ती विस्तारों की वह मुलाकात लेती है और उसकी संवेदना कुछ ऐसी करवट लेती है कि वह शनैः शनैः इन विस्तारों की वेश्याओं को मिलती है, इनमें से कुछेक के साथ तो उसकी सहानुभूति भी हो जाती है और इस प्रकार वेश्या-जीवन के नाना आयाम उसके सामने खुलते जाते हैं ।

उपन्यास में मीना, नूरी, कृष्णा, रमा, नलिनी, मेजूली, चम्पा, गायत्री, महुआ, तुलसी, चन्द्रिका, ईला, पिन्की, कजली, माया, कमली, पिनाकी, श्रावणी, बुलबुल, सोना, रेशमी, मलका आदि बीस-पच्चीस वेश्याओं से सुकीर्ति रूबरू होती है । इनमें से पिन्की जैसी कुछेक हैं जिनको यह व्यवसाय विरासत में मिला है, पर अधिकांश वेश्याएं किसी-न-किसी प्रकार की प्रवंचना का शिकार हुई हैं । किन्तु निन्यानबे प्रतिशत वेश्याएं गरीबी, भूख और जहालत के कारण ही इस व्यवसाय में आती हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में हमें वेश्यावृत्ति के नाना स्तर मिलते हैं । किन्तु मोटे तौर पर यहाँ कलकत्ता के लालबत्ती विस्तार की

तृतीय श्रेणी की सस्ती वेश्याओं का चित्रण हुआ है । लेखिका ने एक-दो स्थानों पर कलकत्ता की हाई सोसायटी की हाई-फाई वेश्याओं का उल्लेख भी किया है, किन्तु उसकी संवेदना उनके साथ नहीं है । यथा —

"कुछ ही दिन हुए पुलिस ने पार्क-स्ट्रीट के कुछ फ्लेटों में छापा मारा था । उन फ्लेटों में ब्यूटी-पार्लर की आड़ में यही धन्धे चल रहे थे । उनमें कई युवा धनाढ्य हाउस-वाइफ और कई कालेज की लड़कियां भी पकड़ी गई थीं । जानती हो, जब हाउस-वाइफ से पूछा गया कि वे इस धन्धे में क्यों आईं तो एक ने जवाब दिया, जीवन की बोरियत को मिटाने के लिए । एक कालेज की छात्रा ने जवाब दिया — जस्ट फार फन । किसी दूसरी ने जवाब दिया — फार सम एकस्ट्रा मनी ।" 108

ये सब तो अपनी मौज-मस्ती के लिए करती हैं । लेकिन कई बार मध्यवर्गीय परिवार की कालेज की लड़कियों को अपने घर की विवश परिस्थितियों के चलते इस व्यवसाय को पार्ट-टाइम जाब के रूप में अपनाना पड़ता है । लेखिका 23 अगस्त 2000 के [illegible] टेलीग्राफ में प्रकाशित घटना का हवाला देती है —" कालेज में पढ़ रही लड़की अपनी ट्यूशन फीस, किताबें और कपड़ों के खर्च के लिए इस पेशे को अपनाने को बाध्य थी । वह दिन में जूनियर कालेज में पढ़ती और शाम को पांच बजे से बारह बजे तक ग्राहकों को सलटाती । औसतन हर रात प्रायः पांच ग्राहक । पिता गोलाबारी पुलिस थाने में आफिसर थे । उनकी सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो गई । बड़ा भाई अमरिका में उड़ गया था । मां-बेटी एकदम अकेली । मां को बाद में ल्युकोमिया हुआ तो उसके घर के संचित जेवर तक बिक गए । बर्तन-भांडे तक बेचने की नौबत आ गई । मां भी अब नहीं बची और लड़की के जीवन में भी अंधेरा बढ़ता गया । टेलीग्राफ में पूरी विस्तृत रिपोर्ट छपी है उसकी, फोटो सहित ।" 109

उपन्यास में कुछ वेश्याओं की तो बाकायदा केस-हिस्ट्री लेखिका ने प्रस्तुत की है जिनमें मीना, नलिनी, गायत्री, चन्द्रिका,

माया देवनार , पिन्की , रेशमी आदि मुख्य हैं । साथ ही लेखिका ने प्रसंगोपात्त कुछेक उदाहरण-कथाओं का आलेखन भी किया है , जिनमें साधु और वेश्या की कहानी , वणिक-पुत्र और वेश्या की कहानी , वेश्या और ब्राह्मण की कहानी (राजस्थानी लोककथा) , लैई की कथा , साधु की कथा आदि मुख्य हैं ।

मीना एक कोठे की मालकिन है । पहले वह भी वेश्या थी । उसे कोठेवाली , कोठा-मालकिन या कुटनी कह सकते हैं । और मालकिनों की तुलना में वह कुछ-कुछ उदार है । अपनी वेश्याओं के प्रति उसमें माया-ममता और जिम्मेदारी का बोध है । वह किसी "छुकरी" को अपने यहां नहीं रखती । नाबालिग लड़की को ये लोग "छुकरी" कहते हैं । दूसरे शब्दों में उसे "बाल-वेश्या" कह सकते हैं । वह कम उम्र के लौंडों को भी डांट-डपटकर भगा देती है । मतलब कि अपने धंधे के उसके कुछ "मौरल्स " हैं , जिनका वह पालन करती है । वह वेश्याओं को "अधिया सिस्टम " पर रखती है । " मैडम मीना के अधीन छः वेश्याएं हैं , सभी अठारह से तीस के बीच की । इन्हें दूसरी स्वतंत्र वेश्याओं की तरह सड़क पर ग्राहकों की प्रतीक्षा में खड़े नहीं रहना पड़ता है । इनके लिए ग्राहक जुटाना मीना का काम है । लड़कियों की तरफ से वही बात करती हैं ग्राहकों से , पेरे "कैटलोग " के साथ । इस व्यवस्था को इन लालबत्ती इलाकों की भाषा में "अधिया सिस्टम " कहा जाता है । यानी आधा-आधा — फिफ्टी-फिफ्टी । वेश्याओं को रहने की सुविधा देना एवं ग्राहक जुटाने के बदले मीना प्रत्येक वेश्या से उसकी कमाई का पचास प्रतिशत वसूल लेती है । कपड़े , साबुन , श्रृंगार की सामग्री एवं बाकी रोजमर्रा की जरूरतें वेश्या के निजी खाते में । हां , जरूरत पड़ने पर वह मालकिन से उधार ले सकती है जिसके लिए मालकिन खासा व्याज वसूलती है ।" 110

मीना वेश्या किस तरह हुई उसकी कथा भी बड़ी दर्दनाक है । मीना बंगाल के तलहटी गांव में अपनी चार बहनों और तीन भाइयों के साथ रहती थी । परिवार में पारावार गरीबी । साढ़े-

HANSA MEHTA

दश-ग्यारह साल की लड़की मीना ने तीन-चार घरों का काम पकड़ लिया था- झाड़ू-पोंचा-बर्तन, कपड़े धोना आदि का । एक बार एक प्याली क्या टूट गई मालकिन ने झोंटा पकड़कर उसकी बुरी तरह से पिटाई की । बाबा ने उसे काम पर जाने से मना कर दिया । उन दिनों में एक जनानी से बाबा की मुलाकात हुई । उसने उसे ऐसा बताया कि वह कलकत्ते में उसे ऐसा काम दिला सकती है, जिसमें उसे कमसे कम खटना पड़े । एक पाँच-छः साल की बच्ची की संभाल करनी थी । माँ-बाप पहले तो रोने लगे, पर फिर बाबा ने मन कड़ा करके कहा कि "एखाने हो तो तोमाके भालो करे राखते पारछी ना, ओखाने तुमि तो भालो करे खेते पारबे... जेओ, परे जदि पारो पुतुल (छोटी बहन) केओ नीये जाओ । (यहां तो मैं तुमको अच्छे से रख नहीं सकता, तुम जाओ, बाद में यदि संभव हो तो पुतुल को भी लेती जाना ।)" [111] उस जनानी ने अपना वादा निभाया था । एक भले घर में उसको रखवा दिया । आदमी विधुर था । उसकी छोटी बच्ची को संभालना था । बदले में बढ़िया खाना, बढ़िया पहनना । पर एक दिन उस वहशी आदमी ने उसके साथ बलात्कार किया । फिर तो यह क्रम रोजमर्रा का हो गया । एक दिन मौका देखकर वह भागी, तो एक रेल्वे कर्मचारी के हत्थे पड़ गयी । छः महीने उसे पूरी तरह से भोगने के बाद वह हरामी मीना को इन अंधेरी गलियों में बेच गया ।

नलिनी की कहानी भी कुछ-कुछ इससे मिलती-जुलती है । वह वीरगंज गांव की है । मां-बाप खेती करते थे । वे भी छः भाई-बहन थे । उसके भी घर में गरीबी और अभावों का साम्राज्य था । वह बचपन से ही कुछ शौकीन तबियत थी । उसकी इस कमजोरी का फायदा एक आदमी ने उठाया । वह उसे कभी बिन्दी, कभी लिपस्टिक, कभी चोकलेट, कभी पायल आदि देता था । कभी-कभी समोसे और रसगुल्ले भी खिलाता । नलिनी उसकी ओर खींचती गई । वह उससे प्रेम का नाटक कर रहा था और इस प्रकार अंततोगत्वा एक दिन उसे भगाकर ले जाने में कामयाब हो गया । नलिनी के कुछ दिन तो बहुत ही अच्छे

जाते हैं, लेकिन एक दिन वह आदमी पैसे खत्म हो जाने का रोना लेकर बैठ जाता है और नलिनी से कहता है कि पैसों के लिए उसे गांव जाना पड़ेगा और तब तक उसे उसकी एक मामी के यहां रहना पड़ेगा।" ठीक यही शब्द थे उस भौंसड़ी के ... और वह मुझे बहु-बाजार के किसी चकले में बेच गया हरामी। आज भी जब-जब दिन के पहले ग्राहक के पास जाती हूं तो उसके नाम पर, अपने उस पहले मर्द पर एक बार थूक अवश्य देती हूं।" 112

मीनाबाई के चकले में एक नयी लड़की आई है नूरी। आई तो है अपनी मरजी से, लेकिन अभी तक किसी ग्राहक के पास नहीं गई है। मीनाबाई तथा उसके चकले की और वेश्याएं उसे पिछले आठ-दश दिनों से समझा रहे हैं, पर अब मीनाबाई के भी धीरज का अन्त आ गया है। वह सुंदरवन के पास के किसी गांव की है। मां-बाप कृषक मजदूर। किसी तरह रो-पीटकर गुजारा चल रहा था। उन्हीं दिनों में उसके पड़ोस की एक लड़की का धनादेश (मनी आर्डर) उसके मां-बाप पर आया तो नूरी ने सोचा कि वह भी कुछ अपने मां-बाप के लिए कर सकती है। बाद में कुछ महीनों बाद वह लड़की जब गांव आई तो नूरी उसके पीछे लग गई कि मुझे भी अपने साथ ले जा। उस लड़की ने गांव में सबको यह बताया था कि वह कलकत्ते में नौकरी करती है। वह लड़की दो-एक बार तो हिचकिचायी पर फिर यह सोचकर कि यदि वह ऐसे नहीं मरेगी तो गांव में भुखमरी से मर जाएगी। अतः वह उसे अपने साथ ले जाने के लिए तैयार हो गयी।" रास्ते में उसने नूरी को भला-बुरा सबकुछ समझा दिया था, यहां तक कह दिया था कि चाहे तो अभी भी लौट सकती हो, भाड़ा भी मैं ही दे दूंगी, परतब तो जोश चढ़ा था रानी भवानी को दाने-दाने को तरसते भाई-बहनों के लिए कुछ भी करने की उछाह में वहां से निकल आई। यहां आकर अब बढ़िया पहनने को एवं भरपेट भकोसने को मिल गया है तो अपना चरित्तर दिखा रही है।" 113 यह बात रमा सुकीर्ति को बता रही है। सुकीर्ति को रमा से वेश्या-जीवन के बारे में कई

रहस्य जानने को मिलते हैं। रमा स्वयं अपने बारे में बताती है — "मैं हर महीने अपने गांव, अपने मां-बाप को, छोटे भाई-बहनों के लिए हजार रुपये के आसपास भेजती हूं। यह कहकर कि मैं किसी कारखाने में काम करती हूं और अठारह सौ रुपिये महीने कमाती हूं। यदि मालूम पड़ जाए उन्हें कि मैं कैसे कारखाने में काम करती हूं तो मेरा मुंह तक न देखें वे ... पैसा लेना तो दूर की बात है।" 114 लेखिका ने सुकीर्ति के माध्यम से एक टिप्पणी यहां दी है — "दिमाग घूमने लगता है सुकीर्ति का, इतना गलीज, निकृष्ठ, भयानक, यातनादायक जीवन जीते हुए खुलेआम देह बेचने वाली ये लाइनवालियां भी पूरी तरह से एक डर से मुक्त नहीं हो पाती हैं। आदिकाल से चला आ रहा है यही मध्यवर्गीय डर, इज्जत का डर। लगभग हर लाइनवाली भरसक चेष्टा करती है उन आत्मीयों से जिन्हें वह प्यार करती है, सम्मान करती है, अपने पेशे को कुंवारी कन्या के गर्भ की तरह छिपाए रखना।" 115

एक स्थान पर सुकीर्ति रमा से पूछती है कि "चकले में लेते वक्त मालकिन क्या-क्या देखती है?" तो उसके उत्तर में रमा कहती है — "यदि जगह खाली हो तो मालकिन को सिर्फ इससे मतलब होता है कि हम कमाकर दे पाएंगी या नहीं कि कहीं हम नखरेवाली तो नहीं है — हां, आजकल पुलिस की पकड़ा-धकड़ी से मालकिन कच्ची उमर की जो देखने में एकदम बच्ची लगे उनको ~~रखने~~xx रखने में कतराने लगी हैं। बाकी मालकिन को इससे कोई मतलब नहीं है कि हम कौन हैं और कहां से आई हैं। ... यूं मालकिन चाहती हैं कि ~~उन्हें~~x उन्हें अधिकांश लड़कियां 16-17 वर्ष के आसपास की मिल जाएं और अधिकतर लड़कियां आती भी इसी उमर के आसपास की हैं। 25-26 के आसपास तक तो पहुंचते-पहुंचते वे चकले से पिण्ड छुड़ाकर किसी प्रकार अपने लिए कोई कमरे का जुगाड़ कर अपने रूजगार में (स्वतंत्र वेश्यावृत्ति में) उतर जाती हैं। पर कई बार इक्की-दुक्की कोई छब्बीस-सत्ताईस

के आसपास की भी आ जाती है, तो मालकिन उसके शरीर को अच्छी तरह टटोल लेती है कि शरीर में कोई चमड़ी रोग तो नहीं, शरीर में दम है या नहीं। ... फिर अंग विशेष की ओर इशारा कर बताती है वह " ये कड़क होने चाहिए "। एक बार एक लड़की आई थी, देखने में भी खूबसूरत थी, कड़क भी थे, पर अत्यधिक धूप में खड़े रहने के कारण पूरे शरीर पर दाने-दाने उग आए थे, मालकिन ने नहीं लिया उसे।" 116

नये-पुराने ग्राहकों के अंतर को बताते हुए रमा कहती है -- " अरे उनके ताकने-बतियाने और तो और उनके कमरे में घुसने के ढंग से ही समझ में आ जाते हैं। घुसते ही झेंपेंगे, शर्म से ऐसे लाल हो जाएंगे कि लड़कियों को भी मात करेंगे। ऐसे सहमे डरे सकुचाए रहेंगे जैसे सारी दुनिया इन्हें ही देख रही हो। चोर की तरह घुसते ही बत्ती बन्द कर देंगे -- जामा खुलते चाहिबेन नो (कपड़े नहीं उतारना चाहेंगे)। अरे जो पक्के हाड़े होते हैं उनकी बात ही अलग होती है। बात करते-करते साले चोली में झांकते रहेंगे और घुसेंगे तो ऐसे जैसे किसी सिनेमा हाल में घुस रहे हों। न ही वे अधिक बात करते हैं। जबकि नए आने वाले पहले वातावरण बनाना चाहते हैं -- जबकि पुराना खिलाड़ी सीधा चालू हो जाता है। नयों के साथ हम भी फांकी मार लेती हैं जबकि पुरानों के साथ अमें भी ..." 117

गायत्री एक फ्लाइंग वेश्या है। फ्लाइंग वेश्या उसे कहते हैं जो इन इलाकों में स्थायी रूप से नहीं रहती हैं। वे आसपास के इलाके या गांवों से आती हैं और इन बदनाम बस्तियों में भाड़े का किराया लेकर काम करती हैं। गायत्री के दो बच्चे भी हैं गांव में अपने पति से जिसको उसने पांच साल से छोड़ दिया है। वह अपनी सास के साथ रहती है और उससे कह रखा है कि वह शहर में काम करती है। हररोज रात को अपने गांव पहुंच जाती है। गायत्री से भी सुकीर्ति को कई बातें जानने को मिलती है। गायत्री के मुंह से

ही वह पहली बार इन्द्राणीदी का नाम सुनती है । इन्द्राणी दी कलकत्ता में ही "संलाप" नामक एक संस्था चलाती है जो वेश्याओं के कल्याण के लिए काम करती है । गायत्री और चन्द्रिका जैसी वेश्याएं इन्द्राणी दी के संलाप से जुड़ी हुई हैं और उनकी मदद से इन लोगों ने कई लड़कियों की वेश्या होने से बचाया था । आईशा और अफसाना को इन्हीं लोगों ने बचाया था । श्रावणी पहले तो एक धुल्डाजर स्वतंत्र वेश्या थी पर बाद में उसकी चेतना जगती है तो वह नाबालिग लड़कियों को "छुकरिया" होने से बचाती है । कई बार वेश्याओं को लेकर वह उनकी मालकिनों से भी झगड़ पड़ती है, ऐसे में एक दिन कुछ बूढ़ी वेश्याएं और दलाल मिलकर उसकी दारू में जहर मिला देते हैं । इन्द्राणी दी के पहुंचने से पहले उसने तड़प-तड़प कर अपने प्राण छोड़े थे । [118]

माया देवनार भी एक कुटनी वेश्या है । वह सुकीर्ति को बताती है कि कैसे दस-ग्यारह साल की नाबालिक अविकसित लड़की को "छुकरी" (बाल-वेश्या) बनाया जाता है । " किसी भी ~~छंकरी~~ छुकरी के उस अंग में (आंख के इशारे से बता देती है कि कौन-सा अंग) शोला (कागज का बना पदार्थ जो पानी में पड़ने से गल जाता है, जिसे बंगाली भाषा में शोला कहा जाता है ।) घुसा दिया जाता है, फिर उसे पानी के टब में बिठा दिया जाता है । जैसे-जैसे पानी में शोला फूलता है वैसे-वैसे गुप्तांगों में भी फैलाव आता जाता है ।" [119] किन्तु इसे भी विधि की विचित्रता ही समझना चाहिए कि जिस माया ने अनेक नाबालिग कच्ची कली-सी लड़कियों के गुप्तांग में शोले घुसा-घुसा कर "छुकरिया" बनाया था, एक दिन उसकी ही लड़की पर माया का ही एक चहेता ग्राहक बलात्कार करके उसे वेश्या बना देता है । माया अस्पताल गई थी । उस बीच उसकी लड़की गांव से पता-पूछते-पूछते उसके कोठे पर पहुंच जाती है । और एक ग्राहक आधे घण्टे तक उसके साथ बलात्कार करता है ।" आधे घण्टे में उस किशोरी पर शारीरिक फतह कर वीरतापूर्वक मूंछ ऐंठता एवं अपने खांटी मर्द एवं

असल बाप का साबित करते हुए वीर-बांकुरे की तरह जैसे ही वह उस खोली से बाहर निकला तो सामने साक्षात् रण-चंडिका-सी खड़ी माया। जैसे नया अवतार लेकर उतरी हो इस धरती पर। रोम-रोम सुलगता ज्वालामुखी। उसी दिन अस्पताल से छुट्टी मिली थी उसे। पुत्री की इज्जत लुटती देख, अपने जीवन की पूरी तपस्या ही भंग होती दिखी उसे। सपनों का साम्राज्य पूरी तरह धुआं-धुआं। स्वयं का वेश्या बन जाने का ~~xx~~ दृश्य पूरी आक्रामकता के साथ कौंध गया आंखों में। पूरी धरती कंपकंपाती और सर्वनाश की ओर लपकती दिखाई दी। भीतर जैसे ऐसा लावा उठा कि बढ़ते हाथों को अब और जब्त नहीं कर पाई। घर के बाहर रखी मांस काटने की बोटी (गंडासा) उठाई और उसे तुलकर दे ~~xxxxxxx~~ मारी — अपने ही उस चहेते वीर बांकुरे पर। और तब कहीं जाकर थमा उसके गुस्से का लावा। वार पूरे वेग से पड़ा और वहीं छटपटाते हुए उसने गर्दन लटका दी।"[20]

पिन्की और रेशमी की कहानी भी बड़ी दर्दनाक है। पिन्की को वेश्यावृत्ति विरासत में मिली है। उसकी मां भी वेश्या थी। अतः उसके पास अपना एक कमरा है। उसके मन में अपने व्यवसाय के संदर्भ में कोई अपराध बोध नहीं है। वह बिन्दास्त किस्म की वेश्या है। जो कमाती है मौज-शौक में खर्च भी कर डालती है। उसको किसीका गर्भ रह जाता है। किसी सस्ते बाजारू किस्म के डाक्टर से वह अबार्शन करवाती है। सुकीर्ति वहां पहुंचे उसके पहले तो सबकुछ हो चुका था। ब्लिडिंग हो रही थी, फिर भी एक-दो घण्टे में वह छुट्टी दे देता है और उसी हादसे में वह दम तोड़ देती है। सुकीर्ति के सामने ही उसकी मौत होती है। अपनी सहकर्मिणी वेश्या रेशमी से मरने से पहले वह कहती है — "मैं वेश्या, मेरी मां वेश्या, बहन वेश्या और अब यह पुत्री भी इसी दुनिया में ... ईश्वर अगले जन्म में कुछ भी बनाना ... चील, कौआ, सांप, गाय, ... पर वेश्या नहीं।"[21]

वेश्याओं का जीवन खतरों से भरा होता है । प्रत्येक वेश्याको अपनी ढलती आयु की चिन्ता होती है । उमर ढलते-ढलते पैंतीस-चालीस वर्ष में ही उनकी देह अनेक रोगों से जर्जर और बदबूदार हो जाती है — चर्मरोग, कुष्ठ, सिफीलिस, गनोरिया और अब एड्ज । माया भी एच. आई. वी पोजिटिव है, रेशमी भी । रेशमी अपना इलाज नहीं कराना चाहती है, क्योंकि इस महा संक्रामक रोग द्वारा वह सारी पुरुष जाति से बदला लेना चाहती है । परन्तु उसके पहले ही उसकी मालकिन उसे निकाल देती है और उसकी जगह पर चिन्की की बेटी मलका को ले लेती है । जीवन-संध्या में मिले इस अपमानजनक निष्कासन से रेशमी का संतुलन और भी गड़बड़ा जाता है । अपने आखिरी दिनों में वह सड़क पर विक्षिप्तावस्था में ही भीख मांगते-मांगते मृत पाई गई थी और हिन्दू सत्कार समिति की गाड़ी उसकी मृत देह को उठाकर ले गई थी ।[22]

मधु कांकरिया द्वारा प्रणीत प्रस्तुत उपन्यास को हम अनुभव-समृद्धि का उपन्यास कह सकते हैं । अनेक दृष्टांत कथाएं, देशी-विदेशी लेखकों के अनेक उद्धरण, मुंबई का स्टाक-एक्सचेन्ज और उसके चढ़ते-गिरते सिन्सेक्स, मन्नालाल एण्ड ब्रधर्स की युरेका फर्म, उसका उत्थान-पतन, वेश्यावृत्ति के साथ उसकी तुलना, नीदरलैण्ड और उसका एम्सटर्डम [दुनिया का सबसे बड़ा स्थापित लालबत्ती विस्तार, इन्द्राणी दी और उनका संलाप, उनकी प्रवृत्तियां, वेश्यावृत्ति का इतिहास, चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार की विषकन्या मदनिका, वैशाली की नगरवधू आम्रपाली, कुमारपाल सोलंकी के समय की कोशा और इन गणिकाओं से सम्बद्ध इतिहास, वात्स्यायन कामसूत्र, बुद्ध और मार्क्स आदि की चर्चा इस उपन्यास को एक अनुभव-संपन्न उपन्यास बना देता है । लेखिका ने कलकत्ता के सोनागाछी लालबत्ती विस्तारों की मुलाकात लेकर उपन्यास लिखा है, अतः वेश्याओं के जीवन का यह एक सच्चा दस्तावेज तो है ही, लेकिन अपने अनूठे भाषा-शिल्प के कारण यह एक पठनीय

उपन्यास भी बन पड़ा है । विषय के कारण अश्लीलता में तरह जाने का खतरा था , किन्तु लेखिका की संवेदना और दर्द के कारण ऐसा नहीं हो पाया है । पग-पग पर चुनौतियां थीं । श्लीलता-अश्लीलता की चाबुकें थीं । वेश्याओं की जो परत-दर-परत यहां खुलती गई है उसकी कुरूपता , कुत्सा और भयानकता का चित्रण करने में लेखिका के सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न था कि वह स्वयं को कहां तक "डि-क्लास" करें ? कई विदेशी लेखकों तक ने इस विषय पर छद्म नामों से लिखा है , वहां मधु कांकरिया का यह साहस या दुस्साहस {?} वास्तव में काबिले-~~दxxxxहै~~ दाद है ।

वेश्या-जीवन से संयुक्त अन्य उपन्यास :
==============================

प्रबंध की अपनी मर्यादा और विस्तार-भय के कारण यहां हम कुछेक ऐसे उपन्यासों की संक्षिप्त चर्चा या उल्लेख कर रहे हैं , जिनकी चर्चा ~~xहमxहेx~~ इन दोनों अध्यायों में — तृतीय और चतुर्थ में — नहीं हो पायी है ।

प्रेमचंद के उपन्यास "ग़बन" में हमें एक नया आयाम मिलता है कि उसका राजनीति में कैसे उपयोग किया जाता है । पुलिस रमानाथ को मुखबिर बनाना चाहती है और इस काम के लिए वे जोहरा नामक वेश्या की सहायता लेते हैं । जोहरा के कारण रमानाथ सरकारी गवाह बन जाता है , परन्तु बाद में जोहरा का हृदय-परिवर्तन होता है और रमानाथ को भ्रष्ट करने के स्थान पर वह स्वयं सुधर जाती है । जोहरा के त्याग और देशभक्ति को देखकर रमानाथ का भी हृदय-परिवर्तन हो जाता है । जोहरा नायक रमानाथ को प्रेम करने लगती है और इसी सबब अपने पूर्व-जीवन में लौटना नहीं चाहती और फलतः वह गंगा में डूबकर मर जाती है । प्रेमचंद के "गोदान" में भी लेखक ने वेश्या-समस्या की कुछ चर्चा की है । मिर्जा कहते हैं — "रूप के बाजार में वही स्त्रियां आती हैं , जिन्हें या तो अपने घर

में किसी कारण से सम्मानपूर्वक आश्रय नहीं मिलता या जो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती हैं । और अगर ये दोनों प्रश्न हल कर दिए जाएं तो बहुत कम औरतें इस भांति पतित हों ।" 123 इसके विपरीत प्रो. मेहता वेश्यावृत्ति के लिए नारी की भोग-विलास प्रवृत्ति को मूल कारण बताते हैं --" मुख्यतः मन के संस्कार और भोग-लालसा ही औरतों को इस ओर खींचती है ।" 124 लेकिन प्रो. मेहता इसके बाद जो बात कहते हैं वह शायद ज्यादा महत्त्वपूर्ण है --" जब तक दुनिया में दौलतवाले रहेंगे, वेश्याएं भी रहेंगी ।" 125 वे कहते हैं सुधारवाद और आदर्शवाद समस्या को सम्पूर्ण रूप से समाप्त नहीं कर सकते हैं । "जड़ पर जब तक कुल्हाड़े नहीं चलेंगे, पत्तियां तोड़ने से कोई नतीजा नहीं ।" 126

प्रसादजी के "कंकाल" उपन्यास में भी इस समस्या की थोड़ी-बहुत चर्चा हुई है । वैसे प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने जो अभिजात वर्ग की पोल खोली है, वहां हमें अभिजात वर्ग की अप्रकट प्रकार की वेश्याएं मिलती हैं । किन्तु प्रसादजी ने प्रकट स्वरूप की वेश्याओं का जिक्र भी किया है । वस्तुतः प्रसादजी समाज में फैले अनाचार और भ्रष्टाचार को स्पष्ट करने के लिए xxxxxx प्रसंगवश वेश्यावृत्ति का चित्रण करते हैं, फलतः इस कुप्रथा के मूल कारण पर उनकी दृष्टि नहीं गई है । उनके विचार से " बहुत-सी स्वेच्छा से आई थीं और कितनी ही कलंक लगने पर घर वालों ने ही मेले में छोड़ दीं ।" 127 तारा भी इस प्रकार मेले में छोड़ दी गई कुलवधू थी, जो परिस्थितियों में पड़कर वेश्या हो जाती है । यहां प्रसादजी विघटित समाज की जर्जर मर्यादाओं और खोखली नैतिकता पर व्यंग्य करते हैं । यह समाज किसीको एक बार गिरने पर फिर उठने का अवसर ही नहीं देता है । मधु कांकरिया ने "सलाम आखिरी" में एक अध्याय का नाम ही यदि दिया है : "वंस ए प्रोस्टिट्यूट, आलवेज़ ए प्रोस्टिट्यूट ।" 128

भगवतीचरण वर्मा इस समस्या का चित्रण एक नये धरातल

पर करते नज़र आते हैं । वे एक वेश्या और भद्र समाज की नारी का मानवतावादी दृष्टि से मूल्यांकन करते हैं और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भद्र समाज की ये नारियां मानवतावादी दृष्टि से देखा जाए तो वेश्याओं से भी अधिक पतित और भ्रष्ट हैं । वेश्याओं का अपना चरित्र होता है, लेकिन इन भद्र नारियों का कोई चरित्र नहीं होता । वह तो मौसम के अनुरूप बदलता रहता है । ये लड़कियां प्रेम किसीसे करती हैं और विवाह दूसरे से । "तीन वर्ष" उपन्यास की प्रभा प्रेम अपने सहपाठी रमेश से करती है, लेकिन उसके शादी के प्रस्ताव को ठुकरा देती है क्योंकि रमेश निर्धन है । यहां जाति या समाज प्रेम-विवाह के आड़े नहीं आता, बल्कि आर्थिक स्थिति बाधक होती है । रमेश प्रभा की सुख-सुविधा के लिए एक हजार रूपया माहवार नहीं जुटा सकता था ।[129] प्रभा बहुत ही चालाकी के साथ अपने प्रेमी रमेश को समझाती है —" हम दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, इतना काफी है और सदा प्रेम करते रहेंगे । विवाह की क्या आवश्यकता है ?" [130] प्रभा की दृष्टि में प्रेम की परिणति विवाह में होना आवश्यक नहीं है, बल्कि विवाह तो आर्थिक सुविधाओं को जुटाने का एक समझौता मात्र है ।[131] गुरुदत्त की बहुचर्चित फिल्म "प्यासा" की नायिका भी नायक से कुछ ऐसा ही कहती है । इस तरह वर्माजी ने यहां प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से हमारे भद्र समाज को को एक चुनौती दी है । उपन्यास में एक स्थान पर कहा गया है — " तुम्हारी प्रभा से वेश्या सरोज लाख गुना अच्छी है । "[132]

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपने उपन्यास "अप्सरा" में इस समस्या को रोमाण्टिक भावभूमि पर स्थापित करते हैं । अपने समय में (1930 ई.) उन्होंने एक वेश्या-पुत्री का विवाह एक भद्र, कुलीन और शिक्षित पुरूष से करवाकर एक साहस का काम किया था । इस प्रकार यहां निराला जड़ और रूढ़िवादी मान्यताओं को पर मानो कुठाराघात करते हुए एक सुधारवादी समाधान प्रस्तुत करते हैं । सम्प्रति चल रहे धारावाहिक "तीन बेटियां" में भी एक कुलीन विलायत-पलट शिक्षित

युवक से करवायी है, किन्तु वहां दृष्टिकोण या नज़रिया आदर्शवादी या सुधारवादी नहीं है। युवक एक पतित, चरित्रहीन, शराबी-जुआरी है। उसके मूल में प्रेम नहीं प्रत्युत वासना है। वेश्या कजरी भी एक धूर्त और मक्कार किस्म की लड़की है। उसे एक राजघराने की पुत्री पवित्रा के रूप में बताया है। यह तुलना महज इसलिए कि समान घटनाएं भी दृष्टिकोण के बदलते ही अपना रूप बदल देती है।

पांडेय बेचन शर्मा "उग्र" इस समस्या को एक दूसरे ही सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं। उनका मानना है कि अच्छी कुलवधू बनने के लिए अच्छे खानदान में पैदा होना जरूरी नहीं है, बल्कि अच्छी परिस्थितियां मिलें, तो एक वेश्या भी अच्छी कुलवधू बन सकती है। अपने "शराबी" उपन्यास में वेश्या जवाहर को वे इसके उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके उपन्यास " पतिता की साधना " की वेश्या निन्दिया सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक रूढ़ियों और संकीर्ण नैतिकता के परिणामस्वरूप वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए विवश होती है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का दृष्टिकोण वेश्याओं के संदर्भ में संवेदना और सहानुभूतिपूर्ण है। शैलेश मटियानी, जगदम्बाप्रसाद दीक्षित, मधु कांकरिया जैसे परवर्ती लेखकों के भांति वे भी वेश्याओं को अभागिनी बताते हैं।[133] वे यह कतई मानने को तैयार नहीं है कि वेश्याएं व्यभिचारीणी होती हैं। उनको वैसा हमारी समाज-व्यवस्था ने बनाया है। गरीबी, लाचारी और पेट की आग के कारण ही उनको अपना शरीर बेचना पड़ता है।[134] शास्त्रीजी भी "उग्र"जी की तरह ही कहते हैं —" वेश्या घृणा की पात्र नहीं, वरन् वह सामान्य गृहिणियों से भी अधिक योग्य तथा आदर्श हैं। "[135]

वैसे तो देवकीनंदन खत्री अपने तिलस्मी उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं, किन्तु उन्होंने अपने "काजर की कोठरी" नामक सामाजिक उपन्यास में इस समस्या को उठाया है। किन्तु उनका दृष्टिकोण पुराना है। वे वेश्याओं को एक सामाजिक बुराई के रूप में ही देखते हैं और उनके मानवीय पक्ष को बिलकुल नज़रअन्दाज़ कर गये हैं।

उनका मानना है कि वेश्या का काम दूसरों से रुपया हड़पना है । वे अपनी मीठी बातचीत और दिखावटी व्यवहार से एक समय में अनेक पुरुषों को उलझाये रखती हैं और पुरुष कामान्ध होकर उसके चंगुल में फंसकर अपना समस्त धन खो बैठता है । लेखक के अनुसार वेश्या किसी एक पुरुष की होकर रह ही नहीं सकती और वह प्रत्येक के साथ अपनत्व का नाटक करती है । "काजर की कोठरी" में वेश्या बांदी नायक पारसबाबू से कहती है —" मैं तुम्हें अपने खर्च के लिए भी तकलीफ देना नहीं चाहती हूं , मैं इस लायक हूं के बहुत-से सरदारों को उल्लू बनाकर अपना खर्च निकाल लूं । मैं तुमसे एक पैसा लेने की नीयत नहीं रखती, मगर क्या करूं अम्मा के मिजाज से लाचार हूं । इसीसे जो कुछ तुम देते हो ले लेना पड़ता है ।" 136

अपनी आर्थिक स्वार्थपूर्ति के लिए वेश्या अपनी साज-सज्जा , नृत्यगान और कुचेष्टाओं का प्रयोग करती है और अपने इन हथियारों से पुरुषों के चित्त का शिकार करती हैं । ईश्वरीप्रसाद शर्मा द्वारा लिखित "स्वर्णमयी" उपन्यास में वेश्याओं के इन लटकों-झटकों और उनके नाज़-नखरों एवं मोहक-मारक अदाओं का चित्रण किया गया है । इसमें जिस वेश्या का आलेखन हुआ है उसका नाम सरस्वती है । लेखक उसके बारे में लिखते हैं —" वास्तव में उसका रूप भी वैसा ही था । बस इस दर्शक-मंडली में कोई उसकी पोशाक पर ही मर गया , कोई उसकी बांकी अदाओं और तिरछी चितवन पर ही जी-जान से फना हो गया , कोई उसके होठों पर चढ़ी हुई पान की ललाई में ही लीन हो गया और कोई इनके नयनों के पलक के पलने पर ही झूलने लगा ।" 137

चण्डीप्रसाद हृदयेश कृत " मंगल प्रभात " की राधा भी अनमेल विवाह के कारण ही वेश्या-जीवन की ओर उन्मुख होती है । राधा का पूर्ण विकसित नारीत्व अपने अबोध पति को प्रेम नहीं कर पाता । ऐसे में यदि उसे अपने सास-ससुर की सहानुभूति मिल पाती तो कदाचित वह उस सर्वनाश से बच जाती , किन्तु वे तो उस पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं । उसका पति भी उसमें साथ देता है । फलतः

अपने आत्मसम्मान तथा रूप-सौन्दर्य और यौवन को तिरस्कृत होते देख उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधकने लगती है और इसलिए अन्ततः वह "प्रेमतीर्थ" की ओर आकर्षित होती है । परंतु "प्रेमतीर्थ" "वासनातीर्थ" साबित होता है । अतः निराशा कहे गर्त में डूबते हुए असहाय-अनाश्रित अवस्था में वह वेश्यावृत्ति को अंगीकृत कर लेती है ।

ऋषभकुमार जैन एवं तेजोरानी दीक्षित के उपन्यास क्रमशः "मास्टर साहब " और "हृदय का कांटा " में यही निरूपित किया गया है कि स्त्री के वेश्या होने के कारणों में एक महाकारण यह होता है कि समाज और उसके घरवाले सदा उसके चरित्र को संदेह की दृष्टि से देखते हैं । यदि स्त्री किसी भी कारण से एक रात कहीं बाहर ही रह जाती है , तो वह उस पर , उसके चरित्र पर लांछन लगाता है और उसे अपने घर से निकाल देता है । यदि कोई सुधारक रोशन-ख्याल व्यक्ति ऐसी स्त्री को सहारा या आश्रय देता है तो लोग उसको भी बदनाम कर देने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं । मधु कांकरिया के उपन्यास "सलाम आखिरी" में विजय नामक एक सज्जन एक वेश्या के पुत्र को मिशनरी स्कूल में दाखिल कराने के प्रयत्न करता है, तब स्कूल का पादरी उसे साफ मना कर देता है :

" जैसे ही लोगों को मालूम पड़ेगा कि यह बच्चा लालबत्ती इलाकों से आता है , सारी अंगुलियां मेरी तरफ उठ जायेंगी कि पादरी अवश्य ही उन लालबत्ती इलाकों में जाता होगा । नो , आई कैन नाट डू एनीथिंग दैट गोज़ अगेंस्ट माई इण्टिग्रीटी । लुक सिस्टम निर्भीक हो सकता है , व्यक्ति नहीं । मैं मानवता की बेहतर सेवा कर सकूं इसके लिए भी यह जरूरी है कि मेरी इण्टीग्रिटी बनी रहे ।"138

सेठ गोविन्ददास ने अपने उपन्यास "इन्दुमती" ‡ 1950 ई. ‡ में वेश्यावृत्ति के संदर्भ में जो हिपोक्रेटिक धारणाएं हैं उस पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि सन् 1917 में यद्यपि वेश्याओं द्वारा किए जाने

डान्स और नृत्य का विरोध होने लगा था तथापि सभ्य कहे जाने वाले समाज में उसका बहिष्कार नहीं हो पाया था और उन वेश्याओं को "मंगलामुखी" के नाम से पुकारा जाता था । शादी-ब्याह , जन्मोत्सव तथा धार्मिक समारोहों में उन वेश्याओं को ससम्मान बुलाया जाता था और उनका नृत्य-गान होता था । "उस समय का अधिकांश धार्मिक उत्सवों में जड़ मूर्ति के दर्शन के लिए नहीं , बल्कि इस चेतन-प्रतिमा के प्रेक्षण के लिए पधारता था । " 139

चण्डीप्रसाद हृदयेश तथा भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास क्रमशः "मंगल प्रभात" तथा "पतन" में लेखक द्वय ने समाज की अनैतिक रूढ़ियों और धर्म के आडम्बरों और ढकोसलों को आड़े हाथों लिया है । जो महंत और धर्म के बड़े-बड़े दिग्गज और ठेकेदार धर्म के विचार से किसी अबला , निरीह , अनाश्रिता नारी को अवलम्ब व आश्रय नहीं देते वे ही लोग उसी नारी के वेश्या हो जाने पर चोरी-छिपे उसके पास जाते हैं । यही है इस तथाकथित धार्मिक कहे जाने वाले समाज की हिपोक्रसी । इनमें से कई रसिक लोग वेश्याओं को संगीत-कला की संरक्षिका समझते हैं तो कई सौन्दर्योपासकों के लिए वे देवियां होती हैं । ये पुरुषसत्ताक समाज अपने स्वार्थ के लिए चाहते हैं कि इन वेश्याओं की स्थिति समाज में बनी रहे । उनका मत है : " इससे गन्दगी गन्दी जगह रह जाती है , बाकी समाज की शुद्धता बच जाती है ।" 140 यही बात मधु कांकरिया ने अपने उपन्यास में बताई है , यथा -- " एक बौद्धिक से पूछा गया , क्या वेश्या-उन्मूलन संभव है ? उसने जवाब दिया , " हां , संभव है , पर वह उसी प्रकार का होगा जिस प्रकार "सोसायटी विदाउट ए गटर । "" 141

तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन एवं नारी-जागरण (विमेन-इमेन-सिपेशन) से प्रभावित होकर इलाचन्द्र जोशी ने अपने "घृणामयी" उपन्यास में एक नवल प्रकार के सुधार की बात कही है । उनका कहना था कि आगामी " आल इण्डिया कांग्रेस कमिटि " के अधिवेशन में यह प्रस्ताव

पारित किया जाना चाहिए कि हिन्दुस्तान भर की सब वेश्याओं को कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए देश भर में उसका प्रचार किया जाए । वेश्याओं में सार्वजनिक जीवन की वृत्ति जाग्रत होने से उनका पतित जीवन भी सुधर सकेगा और देश को भी सहायता मिलेगी । [142]

वेश्याओं के पास सामान्य गरीब अनपढ़ मूढ़-मति लोग ही जाते हैं ऐसा नहीं है । डा. मन्मथनाथ गुप्त ने अपने उपन्यास "अवसान" में अपनी वस्तुमूलक चेतना से दर्शाया है कि जिनके हाथ में समाज की बागडोर है, जो समाज के अगुआ या नेता हैं, ऐसे लोग भी धड़ल्ले से उनके पास जाते हैं । इस उपन्यास की मुनिया नामक वेश्या कहती है — "उसके पास आता कौन नहीं था ? कांग्रेसी, लीगी, वकील, मौलवी, मास्टर, समाज के सभी तरह के लोग ।" [143]

वेश्याओं के पास जाने वाले पुरुषों के आचरण पर नरोत्तम नागर के उपन्यास " दिन के तारे " में खूब कसकर व्यंग्य किया गया है । ये लोग वेश्या के यहां पहुंचकर भी, अनैतिक कार्य करते हुए भी वेश्या को अपने वाग्जाल में अधिक से अधिक फांसने उसकी सहृदयता और सभ्यता का गुणगान गाने लगते हैं । पुरुष की इस प्रकार की चाल को वेश्याएं भी अच्छी तरह से जानती हैं । प्रस्तुत उपन्यास की वेश्या शांति एक स्थान पर ऐसे ही किसी सज्जन से कहती है : " हां, पतित भाइयों का उद्धार मैं अवश्य करना चाहती हूं — उन भाइयों का जो अपनी पत्नी की शराफत को छोड़कर मेरी शराफत पर मुग्ध होने के लिए यहां आते हैं ।" [144]

वेश्या-समस्या और उसके उन्मूलन के संदर्भ में अंचलजी के उपन्यास "चढ़ती धूप" को भी याद कर लेना चाहिए । वे उसका समाधान नारी की आर्थिक स्वाधीनता में ढूंढते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में वे कहते हैं —" रह गई आर्थिक स्वाधीनता की बात । उसके लिए साम्यवादी व्यवस्था के अतिरिक्त दूसरा चारा नहीं । अन्य कोई व्यवस्था नारी की आर्थिक दीनता को कायम

रक्खेगी । तुमको यह मालूम होगा कि रूस में साम्यवाद की स्थापना के बाद से वेश्या-प्रथा का उन्मूलन हो गया है । मैं समझता हूं , यदि साम्यवाद और कुछ न कर केवल मानवता का इतना बड़ा कलंक धो देता है तो उसका सारा अस्तित्व -- उसके लिए सारी कुरबानी और सारा संघर्ष सार्थक है ।" 145

अंचलजी का उपर्युक्त मत एक सीमा तक ठीक है । किन्तु एक तो वेश्यावृत्ति का संबंध केवल केवल आर्थिक मामलों से नहीं है । बहुत-से सामाजिक और धार्मिक ख्याल ऐसे हैं जो कई बार अच्छी-खासी लड़की को वेश्यावृत्ति की ओर ले जाते हैं । दूसरे उसके उन्मूलन के लिए पूरे देश या विश्व में साम्यवादी व्यवस्था को कायम करने की बात है । यह बात ऐसी है कि " न नौ मन तेल होगा , न राधा नाचेगी । " तीसरे हमारे देश में जहां सत्ता के सूत्र साम्यवादी लोग पिछले तीस-चालीस साल से संभाल रहे हैं उस बंगाल में भी वेश्यावृत्ति धड़ल्ले से चल रही है । मधु कांकरिया ने जिन लालबत्ती विस्तारों की बात की है वे सारे के सारे विस्तार कोलकोता के ही हैं । मोटे तौर पर कोलकाता में इस समय (2007 ई.) वेश्याओं की संख्या पचास हजार से ज्यादा होगी ।

डा. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यास "नदी नहीं मुड़ती " में दो प्रकार की वेश्याओं का चित्रण मिलता है -- ग्रामीण अप्रकट समूह की वेश्याएं और दूसरे राजनीतिक क्षेत्र की वेश्याएं । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने बिहार के मिथिला प्रदेश के परिवेश को लिया है । वहां कुछ गरीब ब्राह्मण दहेज और तिलक की समस्या के कारण अपनी बहन-बेटियों का ब्याह नहीं कर पाते हैं । अतः वहाँ एक व्यवस्था है -- कुलीन या श्रोत्रिय ब्राह्मणों की । ये कुलीन ब्राह्मण कई-कई लड़कियों से ब्याह रचाते हैं । ब्याह के बाद लड़की अपने पति के साथ श्वसुर-गृह नहीं जाती है , वह मैके में ही पिता या भाइयों के साथ रहती है । पतिदेव ही कभी-कभी कृपा करके वहां पधार जाते हैं । ऐसे में ये केवल तार्किक दृष्टि से ही ब्याही गई लड़कियाँ

गांव के ही कई-कई पुरुषों और लड़कों से यौन-सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ऐसे में यदि किसी लड़की को गर्भ रह जाता है तो देर रात को गांव के बाहर पत्तल फिंकवा दी जाती है और घोषित किया जाता है कि रात को "पाहुन" (जीजा या दामाद) आए थे। [146] प्रस्तुत उपन्यास की नायिका सुषमा एक राजनीतिक-वेश्या बनकर रह जाती है। सुषमा सुंदर है, शिक्षित है, प्रतिभावान है, लेकिन अपने प्रेमी की "ना" सुनकर ऐसी आहत हो जाती है कि राजनीति के क्षेत्र में चली जाती है। वह सोचती है कि वह इस काजर की कोठरी से बेदाग निकल आयेगी, पर ऐसा नहीं होता। एक राजनीतिक पार्टी में उसके "सोफ्ट ड्रिन्क" में कुछ मिलाकर उसे बेहोश कर दिया जाता और बाद में उसी होटल में उसका "रेप" होता है। फिर तो वही "एक बार बिगड़ गयी तो सदाके लिए बिगड़ गई" वाली मानसिकता में वह राजनीतिक फायदों के लिए अनेक नेताओं की अंकशायिनी होती है।

हिमांशु जोशी द्वारा प्रणीत उपन्यास "छाया मत छूना मन" में आजकल की सोसायटी की कालगर्ल तथा वर्किंग-वुमन की वेश्यावृत्ति को चिह्नित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका वसुधा के "स्टेप-फादर" उसकी मां को अपने बास के साथ रहने के लिए छोड़ आते हैं। वह रातभर बास के पास रहती है। वह ऐसा करते हैं क्योंकि बास के साथ उनके आर्थिक स्वार्थ जुड़े हुए हैं। उसके बाद तो उसके यहां सदैव "कीर्तन" चलते हैं। वसुधा की मां अपनी दोनों लड़कियों — वसुधा और कंचन — को भी इस प्रकार की कमाई के लिए उकसाती है। यथा — "अरी भरजानी, तुझसे कुछ क्यों होगा ? जिसे दो वक्त पेट में ठूंसने के लिए रोटियां मिल जाएं वह क्यों करे मेहनत ? देख न सामने वेद के घर नौ-नौ सौ रूपये महीने आ रहे हैं। तीनों लड़कियां हैं, तीनों क्या कर रही हैं ?" [147] पहले जहां कहीं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी भेजने के लिए मां-बाप कतराते थे और नाटकों में लड़कियों का अभिनय भी लड़कों को करना पड़ता था, वहां प्रस्तुत उपन्यास की परवीन अपनी बेटी कंचन को

होटल में कैबरे नृत्य की छूट देती है, क्योंकि "उसमें आजकल बहुत पैसे मिलते हैं।"[148] वसुधा xxxxx नौकरी करती है, परन्तु उसे भी कभी-कभी अपने बास के साथ सोना पड़ता है। कंचन कैबरे से "ब्लू फिल्म" की राह पर चल पड़ती है, क्योंकि उसकी "न्यूड" तस्वीरों को लेकर उसे ब्लेकमेल किया जाता है। कुछ वर्ष पूर्व जलगांव में ऐसा एक "स्केण्डल" बाहर आया था, जहाँ लड़कियों की इस प्रकार की तस्वीरें लेकर बाद में ब्लेकमेल के जरिये उनसे वेश्यावृत्ति करवायी जाती थी। पिछले साल (2006 ई.) जम्मू-कश्मीर की एक लड़की का इस प्रकार का स्केण्डल भी बहुत मीडिया में चगा था।

लक्ष्मीनारायण लाल कृत "प्रेम अपवित्र नदी" में हमें एक नयी किस्म की वेश्यावृत्ति मिलती है जिसे हम "धार्मिक (?) वेश्यावृत्ति" कह सकते हैं। दिल्ली के "क्यूरवाला" परिवार में यह रूढ़ि बरसों से चली आ रही है कि विवाह के बाद उसका पति उसे हरिद्वार अपने राज-पुरोहित पण्डे को दान करने जाना पड़ता है, हालांकि वह पण्डा बाद में वह भोग (?) अपने जजमान को लौटा देता है। अभी कुछ दिन पूर्व "टाइम्स आफ इण्डिया" में राजकोट का एक किस्सा छपा था जिसमें भी कुलवधू रिया लाठिया ने अपने पति और ससुर पर यह आरोप लगाया था कि वे उसे विवाह के बाद अपने सम्प्रदाय के गुरु के पास भेजना चाहते थे और उसने उसका विरोध किया था।[149]

निरुपमा सेवती के उपन्यास "पतझड़ की आवाजें" में भी वेश्याओं के कोठे का परिवेश चित्रित है। उपन्यास की नायिका अनुभा की सगाई इसी कारण टूट जाती है कि आर्थिक अभावों के कारण अनुभा का परिवार ऐसे स्थान पर रहता है जिसके ऊपर के तल्ले में वेश्याओं का कोठा था। वैसे प्रस्तुत उपन्यास में "वर्किंग-वुमन" की वेश्यावृत्ति का चित्रण भी लेखिका ने किया है। योग्यता होते हुए अनुभा को बास के पी.एस. की पोस्ट नहीं मिलती और वह प्रमोशन उषा ले जाती है क्योंकि वह सबकुछ करने को राजी हो जाती है जो बास

चाहते हैं । उषा अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी , स्वार्थी और हद दरजे की चापलूस है । जिस पुरुष से अपनी स्वार्थ-सिद्धि होती हो , उससे किसी भी सीमा तक अंतरंग होने में उसे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है । उसका तो स्पष्ट अभिमतx अभिमत है : " इस मर्द जात के साथ तभी सोओ , अगर माल हासिल होता हो या पोजिशन हासिल होती हो ।" 150 अपने इस सिद्धान्त के चलते वह कामचोर तथा अकार्यकुशल होते हुए भी सी.के. की पर्सनल सेक्रेटरी बन जाती है । अल्प वेतन में भी वह बड़ी-बड़ी दावतें देती हैं , अतिथियों को महंगी आयातित शराब सर्व करती हैं , क्योंकि इस सबके द्वारा वह और भौतिक समृद्धि हासिल करती है । सी.के. के साथ शारीरिक सम्बन्ध होते हुए भी उसके और पुरुषों से भी वैसे सम्बन्ध है । वस्तुतः अधिकारी उसके निकट सफलता की सीढ़ी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । इस अर्थ में उसकी तुलना "चिड़ियाघर" { गिरिराज किशोर } की मिसेज रिज्वी से कर सकते हैं । मिसेज रिज्वी का तो स्पष्ट सिद्धान्त है कि आराम से नौकरी करने के लिए अफसर को कब्जे में रखना चाहिए और अफसर को कब्जे में रखा जा सकता है — स्वयं बेवकूफ बनकर या अफसर को बेवकूफ बनाकर । 151 धर्मेन्द्र गुप्त के उपन्यास "नगरपुत्र हंसता है " का परमेश्वरी भी सी.के. की भांति अपने अधिकार का प्रयोगx प्रयोग अपनी वैयक्तिक विलासिता तथा लंपटता के पोषण के लिए करता है और वह भी अपने आफिस की अनेक लड़कियों को घुमाता है ।

निरूपमाजी के ही दूसरे उपन्यासxमें "बंटता हुआ आदमी" में भी हमें वेश्यावृत्ति का चित्रण मिलता है । "पतझड़ की आवाजें " की अनुषा जहां कोई समझौता नहीं करती , वहां प्रस्तुत उपन्यास की नायिका सुनंदा को यह काम { वेश्यावृत्ति } बचपन से ही करनी पड़ती है । चार बच्चों के बाद सुनंदा के पिता का निधन हो जाता है । सुनंदा की मां अपने चार अनाथ बच्चों को सहारा देने के लिए पुनर्विवाह का रास्ता अपनाती है । किन्तु दुर्भाग्य से उसे ऐसा कापुरुष मिलता है जिसका दोजख भी उसे ही

भरना पड़ता है, जिसके कारण सुनंदा को भी धंधा करना पड़ता है और उससे धंधा करवाता है उसका सौतेला बाप। साढ़े बारह साल की कच्ची उम्र से ही सुनंदा को शरीर के सौदों की कड़वी सच्चाई से रूबरू होना पड़ता है । यथा —

" मुझे उसकी हरकतें बुरी लगीं। पर सुनता कौन ? वह सारी गरीबी दूर कर सकता था। डैडी को आराम से शराब मिल जाती थी। कितना अच्छा इन्तजाम था! ... पता है, पता है कि मैं कितने बरस की थी ? बारह साल सात महीने की।"152

सुनंदा सुंदर थी। प्रतिभावान थी। वह फिल्मों में जाना चाहती थी और उसके लिए वह शरदजी को चुनती है। वस्तुतः शरदजी को वह सच्चा प्यार भी करती है। शरदजी शादीशुदा है, पर स्त्री-सुख से वंचित है क्योंकि मुंबई की आपाधापी से भरी जिन्दगी में उसके लिए समय ही कहाँ मिल पाता है। ऐसे में सुनंदा उनके जीवन में आती है। शरदजी उसे फिल्मों में काम दिलाते हैं और बदले में वह शरदजी को यौन-जीवन का आनंद प्रदान करती है। इस प्रकार सौदा यह भी है, तथापि वह और लोगों से काफी बेहतर है। इस प्रकार यहाँ लेखिका ने फिल्मों में चल रहे " कास्ट-काउचिंग" को भी उजागर किया है।

मीना दास कृत "ढहती दीवारें" में हम एक नये परिवेश से परिचित होते हैं। आजकल महानगरों में मौत के सौदागरों का एक नया व्यवसाय शुरू हो गया है, जिसके द्वारा लोग रातोंरात अरब-पति — खरबपति हो जाना चाहते हैं। ये नरपिशाच हेरोइन, स्मैक, हशिश, मैंडेक्स, मारेजुएना, चरस आदि की तस्करी का कार्य करते हैं। दिल्ली में इसी प्रकार का एक रैकेट चल रहा है, जिसके केन्द्र में वीरेन्द्र कपूर उर्फ वी.के.। उसका पुत्र अजय उसका बराबरी का पार्टनर है। अजय अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए अपनी पत्नी माधुरी से वेश्यावृत्ति करवाता है। वह उसे सुप्रिया नाम देकर आकाश नामक एक युवक से

उसका दूसरा विवाह करवा देते हैं । हरामी तो इतने हैं कि पिता-पुत्र दोनों इसमें शामिल हैं । एक स्थान पर अजय माधुरी से कहता है — " ये सब (प्यार-चाहत आदि) फालतू सेन्टिमेण्टालिटी हमारी इस लाइन के लिए नहीं । आवर्स इज़ ए ट्वेण्टी फोर अवर्स जोब । अगर माधुरी (उसकी ब्याहता पत्नी) चाहे तो किसी भी पुरुष के साथ जा सकती है, लेकिन मेरे लिए ये प्यार-मोहब्बत की बातें सब बकवास है । " [153] इस प्रकार यहाँ ड्रग्ज़ की तस्करी के लिए पति और ससुर स्वयं अपनी पत्नी व बहू को वेश्यावृत्ति करने पर मजबूर कर देते हैं । माधुरी उर्फ सुप्रिया को भी यह सबकुछ न चाहते हुए भी करना पड़ता है, क्योंकि इन लोगों ने उसके छोटे भाई को गायब कर दिया । अपने छोटे भाई का पता लगाने के लिए ही वह इन लोगों से जुड़ती है जिसमें उसे अपने जिस्म भी देना पड़ता है ।

इन उपन्यासों के अतिरिक्त चतुरसेन शास्त्री कृत "गोली", नरेन्द्र कोहली कृत "संघर्ष की ओर" (जो रामायण पर आधारित पौराणिक उपन्यास है), यशपाल कृत "दिव्या", वीणा सिन्हा कृत "पथ्यज्ञा" (पौराणिक उपन्यास) आदि उपन्यासों में भी इस समस्या का चित्रण किसी-न-किसी रूप में हुआ है ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन द्वारा हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं —

(1) प्रस्तुत अध्याय में विषय को केन्द्र में रखते हुए लगभग उन्नीस उपन्यासों का विस्तृत ब्यौरेवार अध्ययन प्रस्तुत है । उन उपन्यासों में त्यागपत्र, मुक्तिबोध, व्यतीत, दशार्क (जैनेन्द्र); मैला आंचल (रेणु); सूखता हुआ तालाब (डा. रामदरश मिश्र), रेखा (भगवतीचरण वर्मा), नदी फिर बह चली (हिमांशु श्रीवास्तव), इमरतिया (नागार्जुन), काँचघर (रामकुमार भ्रमर), आगामी

अतीत ‌§ कमलेश्वर § , मछली मरी हुई § राजकमल चौधरी § , बोरीवली से बोरीबन्दर तक , किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई , कबूतरखाना § शैलेश मटियानी § ; रामकली § शैलेश मटियानी § , मुरदाघर § जगदम्बा-प्रसाद दीक्षित § , अल्मा कबूतरी § मैत्रेयी पुष्पा § और सलाम आखिरी § मधु कांकरिया § आदि हैं ।

§2§ उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त प्रस्तुत अध्याय में अन्य लगभग पचीस जितने उपन्यासों की संक्षिप्त चर्चा की गई है , जिनमें वेश्या-जीवन का कोई न कोई आयाम मिलता है । ऐसे उपन्यासों में ग़बन , गोदान § प्रेमचंद § ; कंकाल §प्रसाद § , तीन वर्ष , पतन § भगवतीचरण वर्मा § ; अप्सरा § निराला § , शराबी §उग्र § , काजर की कोठरी § देवकीनंदन खत्री § , स्वर्णमयी §ईश्वरी-प्रसाद शर्मा § , हृदय का कांटा § तेजोरानी दीक्षित § , मास्टर साहब § ऋषभचरण जैन § , इन्दुमती § सेठ गोविन्ददास § , मंगल-प्रभात § चण्डीप्रसाद हृदयेश § , घृणामयी § इलाचन्द्रजोशी § , अवसान § मन्मथनाथ गुप्त § , दिन के तारे § नरोत्तम नागर § , चढ़ती धूप § अंचल § , नदी नहीं मुड़ती § डा. भगवतीशरण मिश्र §, छाया मत छूना मन § हिमांशु जोशी § , प्रेम अपवित्र नदी § लक्ष्मी-नारायण लाल § , पतझर की आवाजें §निरुपमा सेवती § , बंटता हुआ आदमी § निरुपमा सेवती § , चिड़ियाघर § गिरिराज किशोर§, नगरपुत्र हंसता है § धर्मेन्द्र गुप्त § , ढहती दीवारें § मीना दास § आदि की गणना कर सकते हैं ।

§3§ उपर्युक्त उपन्यासों में प्रकट-समूह की वेश्याओं का चित्रण व्यतीत , दशार्क , नदी फिर बह चली , आगामी अतीत , बोरीवली से बोरीबन्दर तक , मुरदाघर , सलाम आखिरी , पतझर की आवाजें , अवसान , घृणामयी , मंगल प्रभात , काजर की कोठरी, शराबी , अप्सरा , ग़बन आदि उपन्यासों में मिलता है ।

§4§ ग्रामीण क्षेत्र की अप्रकट वेश्याओं का चित्रण मैला आंचल, सूखता हुआ तालाब, अल्मा कबूतरी आदि उपन्यासों में मिलता है ।

§5§ नगरीय क्षेत्र की वेश्याओं का चित्रण नदी फिर बह चली §पटना§, बोरीवली से बोरीबन्दर तक §मुंबई§, मुरदाघर §मुंबई§, सलाम आखिरी § कोलकाता §, पतझर की आवाजें, मास्टर साहब, §दिल्ली§, बंटता हुआ आदमी § मुंबई § आदि उपन्यासों में प्राप्त होता है ।

§6§ इनमें कुछ विपुलवासनावती § निम्फो § प्रकार की वेश्याएं हैं । "रेखा" की रेखा, "इमरतिया" की गौरी, मछली मरी हुई " की कल्याणी, "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " की नर्मदा, "सलाम आखिरी" की माया देवनार आदि को इनमें परिगणित कर कर सकते हैं । इनमें से रेखा और नर्मदा को वेश्या की प्रकट व्याख्या के अनुसार वेश्या की कोटि में नहीं रख सकते ।

§7§ आजकल की हाई सोसायटी में अब "काल गर्ल " प्रकार की वेश्याएं होटलों में उपलब्ध करायी जाती हैं । नदी फिर बह चली, मछली मरी हुई, सलाम आखिरी, ढहती दीवारें, छाया मत छूना मन, चढ़ती धूप आदि उपन्यासों में इस प्रकार की वेश्याओं का चित्रण हुआ है ।

§8§ कुछ खाते-पीते संपन्न परिवार, व्यापारी परिवार या राजनीतिक वर्ग की प्रतिष्ठित गृहिणियां केवल मौज-मस्ती के कारण या बोरियत मिटाने के लिए वेश्यागिरी करती हैं । ऐसी वेश्याओं का चित्रण नदी फिर बह चली, सलाम आखिरी जैसे उपन्यासों में उपलब्ध होता है ।

§9§ राजनीतिक फायदों के ब लिए स्त्रियों का उपयोग किया जाता है । इस प्रवृत्ति का चित्रण दर्शाके, नदी फिर बह चली, अल्मा कबूतरी, सलाम आखिरी आदि उपन्यासों में में उपलब्ध होता

है ।

§10§ नागार्जुन कृत "इमरतिया" उपन्यास में हमें धार्मिक किस्म की वेश्याएं मिलती हैं ।

§11§ "कांचघर " में तमाशेवाली औरतों का चित्रण हुआ है । प्रकट रूप से उसे कला के अंतर्गत रखा जाता है , परन्तु यह तथ्य है कि अपने न्यस्त हितों की रक्षा के लिए उन्हें वेश्यागिरी करनी पड़ती है ।

§12§ "दशार्क" की रचना को किस कोटि में रखा जाए यह एक समस्या है । उसे न वेश्या कह सकते हैं , न कालगर्ल । अपनी घर-गृहस्थी से ऊबे हुए लोगों में वह नयी चेतना भरने का कार्य करती है । इसके लिए वह तगड़ी फिस भी वसूलती है ।

§13§ मधु कांकरिया का उपन्यास "सलाम आखिरी" केवल और केवल वेश्या-समस्या पर लिखा गया उपन्यास है । इसमें कलकत्ता के लालबत्ती विस्तार की वेश्याओं का अनुसंधानमूलक अध्ययन है । उसे हम वेश्या-जीवन का महाकाव्य कहना चाहें तो कह सकते हैं ।

===== XXXXXX =======

: सन्दर्भानुक्रम :

§1§ त्यागपत्र : जैनेन्द्र : पृ. 62 ।

§2§ "हिन्दी उपन्यास " : सं. डा. सुषमा प्रियदर्शिनी : पृ. 217 ।

§3§ आज के लोकप्रिय कवि बच्चन : पृ. ।

§4§ सूखे सेमल के वृन्तों पर : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 81 ।

§5§ से §7§ : त्यागपत्र : पृ. क्रमशः 55, 56, 80-81 ।

§8§ जैनेन्द्र के की उपन्यास-यात्रा का एक नया मोड़ : लेख : साप्ताहिक हिन्दुस्तान : 23 मई , 1965 ।

§9§ से §13§ : मुक्तिबोध : जैनेन्द्र : पृ. क्रमशः 35, 66, 90, 48, 54, ।

§14§ द्रष्टव्य : सभी दैनिकः मार्च-अप्रैल : 2007 ।

§15§ और §16§ : व्यतीत : जैनेन्द्र : पृ. क्रमशः 16, 16 ।

§17§ त्यागपत्र : जैनेन्द्र : पृ. 64 ।

§18§ जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी-चरित्रों का धरातल : डा. बिजली प्रभा प्रकाश : पृ. 191 ।

§19§ व्यतीतः पृ. 19 ।

§20§ जैनेन्द्र का निधन सन् 1988 में हुआ था ।

§21§ दशार्क : जैनेन्द्र : मेरी बात से ।

§22§ "दशार्क " के फ्लैप दिया गया डा. विष्णु खरे का वक्तव्य ।

§23§ जैनेन्द्र से साक्षात्कार : सारिका : 1 सितम्बर , 1983 ।

§24§ दशार्क : पृ. 55-56 ।

§25§ " हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : " पृ. 134 ।

§26§ द्रष्टव्य उपन्यास : त्यागपत्र , सुनीता , सुखदा , मुक्तिबोध ।

§27§ दशार्क : पृ. 179- 180 ।

§28§ त्यागपत्र : पृ. 54-55 ।

§29§ मैला आंचल : फणीश्वरनाथ रेणु : भूमिका से ।

§30§ जल टूटता हुआ : रामदरश मिश्र : पृ. ।

§31§ मैला आंचल : रेणु : पृ. 62-63 ।

§32§ द्रष्टव्य : " हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 126 ।

§33§ और §34§ : वही : पृ. क्रमशः 220, 356 ।

§35§ और §36§ : सूखता हुआ तालाब : डा. रामदरश मिश्र : पृ. क्रमशः 99, 104 ।

§37§ रेखा : भगवतीचरण वर्मा : पृ. 23 ।

§38§ हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों एवं समस्याओं का निरूपण : डा. मनीषा ठक्कर : पृ. 87 ।

§39§ "हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग " : डा. त्रिभुवनसिंह : पृ. 372 ।

§40§ " हिन्दी उपन्यास की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास " : पृ. 154 ।

§41§ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा. त्रिभुवनसिंह : पृ. 564 ।

§42§ से §44§ : नदी फिर बह चली : हिमांशु श्रीवास्तव : पृ. क्रमशः 304-305 , 285-286 , 278 ।

§45§ उपन्यास के लेखक : क्रमशः रेणु , डा. रामदरश मिश्र , शैलेश मटियानी , शैलेश मटियानी , शैलेश मटियानी , डा. लक्ष्मीनारायण लाल आदि-आदि ।

§46§ से §49§ : इमरतिया : नागार्जुन : पृ. क्रमशः 115, 27, 29, 111 ।

§50§ से § 58§ : कांचघर : डा. रामकुमार भ्रमर : पृ. क्रमश : 4, 4, 77, 15, 15, 84, 45, 76, 166 ।

§59§ कामायनी : जयशंकर प्रसाद : ** पृ. 88 ।

§60§ त्यागपत्र : पृ. 39 ।

§61§ "हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास " : पृ. 253 ।

§62§ और §63§ आगामी अतीत : कमलेश्वर : पृ. क्रमशः 111, 35 ।

§64§ और §65§ : मछली मरी हुई : राजकमल चौधरी : पृ. क्रमशः 63, 68

§66§ "हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास " : पृ. 237 ।

§67§ से§75§ : बोरीवली से बोरीबन्दर तक : शैलेश मटियानी : पृ. क्रमशः 101, 100, 100-101, 185, 185, 186, 99, 131 ।

§76§ शैलेश मटियानी का कथा-साहित्य : डा. सलीम वोरा : पृ. 91 ।

§77§ पहाड़ : शैलेश मटियानी विशेषांक : पृ. 135 ।

§78§ और §79§ : रामकली : मटियानी : पृ. क्रमशः 63, लेखकीय वक्तव्य : दो शब्द से §81

§80§ एक अंग्रेजी कहावत । §82§ डा. पंकज बिष्ट : पहाड़ : पृ. 174

§82§

§83§से§89§ : किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई : मटियानी : पृ. क्रमशः 27, 27, 27, 27, 30, 30, 100-101, 92 ।

§90§ नदी फिर बह चली : हिमांशु श्रीवास्तव : पृ. 305 ।

§91§ सलाम आखिरी : मधु कांकरिया : पृ. 15 ।

§92§ और §93§ कबूतरखाना : मटियानी : क्रमशः दो शब्द से, वही ।

§94§ शैलेश मटियानी का कथा-साहित्य : शोध-प्रबंध : डा. सलीम वोरा : पृ. 96 ।

§95§ मेरी तैंतीस कहानियाँ : मटियानी : कहानी-विट्ठल : पृ. 80

§96§ इसी संदर्भ में अज्ञेयजी का अभिमत ।

§97§ मुरदाघर : डा. जगदम्बाप्रसाद दीक्षित : प्रकाशकीय वक्तव्य से ।

§98§ से§104§ : मुरदाघर : पृ. क्रमशः 21, 16, 10, 10, 146, 146-147, 147 ।

§105§ " हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : पृ. 272 ।

§106§ अल्मा कबूतरी : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. ।

§107§ सलाम आखिरी : मधु कांकरिया : प्रकाशकीय वक्तव्य से ।

§108§ से§122§ : वही : पृ. क्रमशः 118, 151, 21, 34, 40, 29, 27, 27, 25, 26-27, 154, 113, 157, 184, 190 ।

§123§से§126§ गोदान : पृ. क्रमशः 444, 445, 445, 445 ।

§127§ कंकाल : प्रसाद : पृ. 53 ।

§128§ द्रष्टव्य : सलाम आखिरी : पृ. 27-31 ।

§129§ से § 132§ : तीन वर्ष : भगवतश्चिरण वर्मा : पृ. क्रमशः 131, 132, 135, 255 ।

§133§ से § 135§ : आत्मदाह : आचार्य चतुरसेन शास्त्री : पृ. क्रमशः 155, 155, 155 ।

§136§ काजर की कोठरी : देवकीनंदन खत्री : पृ. 23 ।

§137§ स्वर्णमयी : ईश्वरीप्रसाद शर्मा : पृ. 10 ।

§138§ सलाम आखिरी : पृ. 191 !

§139§ इन्दुमती : सेठ गोविन्ददास : पृ. 48 ।

§140§ मंगल प्रभात : चण्डीप्रसाद हृदयेश : पृ. 494 ।

§141§ सलाम आखिरी : पृ. 9 ।

§142§ द्रष्टव्य : घृणामयी : इलाचन्द्र जोशी : पृ. 26 ।

§142§ अवसान : मन्मथनाथ गुप्त : पृ. 179 ।

§144§ दिन के तारे : नरोत्तम नागर : पृ. 326 ।

§145§ चढ़ती धूप : अंचल : पृ. 150 ।

§146§ द्रष्टव्य : नदी नहीं मुड़ती : डा. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 36 ।

§147§ और §148§ छाया मत छूना मन : हिमांशु जोशी : पृ.× पृ. क्रमशः 3.7 ।

§149§ सी : टाइम्स आफ इण्डिया : 13-7-07 ।

§150§ पतझड़ की आवाजें : निरूपमा सेवती : पृ. 95 ।

§151§ चिड़ियाघर : गिरिराज किशोर : पृ. 52 ।

§152§ बंटता हुआ आदमी : निरूपमा सेवती : पृ. 97 ।

§153§ ढहती दीवारें : मीना दास : पृ. 100 ।

====== xxxxx ========